

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182162

UNIVERSAL
LIBRARY

“इन लघुकथाओं में मैंने लेखक की जिस उकृष्ट प्रतिभा का दर्शन किया है, उस पर मैं बहुत कुछ न कहकर केवल इतना कहना चाहूँगा कि श्री तुपकरी ने इन लघुकथाओं में जीवन के जिन सत्यों का दर्शन किया है, वे निश्चित ही साहित्य में स्थायी महत्व रखते हैं। इस प्रकार की लघुकथाओं में प्रतिभा की पारदर्शिता की आवश्यकता होती है ! वैसी सूझ बहुत सी इन लघुकथाओं में पाठकों को मिलेगी।....ऐसी लघुकथाओं का साहित्य में सदा से एक विशिष्ट स्थान रहा है ! ये लघुकथाएँ जहाँ काव्य चित्र हैं वहाँ जीवन चित्र भी, जो पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं ! ...मैं उनकी इस कृति का सादर अभिनंदन करता हूँ ! ...”

—पं. उदयशंकर भट्ट

पं खु डि याँ

ल घु क था सं ग्र ह

— “भृंग” तुपकरी



रे खा प्र का श न
गांधीबाग, नागपुर-२.

★ प्रकाशक—

राजकुमार मित्तल,
रेखा प्रकाशन,
गांधीबाग, नागपुर-२.

★ मुद्रक—

डॉ. पी. देशमुख,
बजरंग मुद्रणालय,
कनलबाग, नागपुर-२.

सर्वाधिकार लेखकाधीन

प्रथम संस्करण, २०००

अप्रैल, १९५६

मूल्य १॥ रु.



★ प्रकाशक की ओर से

मनुष्य की इच्छाएँ समय आने पर ही पूरी होती हैं। पुस्तक प्रकाशन की मेरी इच्छा, बहुत समय बाद प्रकाश में आ रही है, इसका मुझे हर्ष है। पहली पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने के लिए अपनी अमूल्य लघुकथाएँ मुझे सौंपकर मेरा आग्रह श्री. 'भृंग' तुपकरी ने स्वीकार किया इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। पुस्तक का आवरण चित्र और अपना रेखा चित्र उन्होंने स्वयं ही बना देने की कृपा भी मुझपर की है। पुस्तक की छपाई सफ़ाई का श्रेय बजरंग मुद्रणालय के मैनेजर श्री. न. शि. भुसारी और वहाँ के अन्य कर्मचारियों को है।

आशा है, विज्ञ पाठक, पुस्तकालयों आदि संस्थाओं के संचालक, पुस्तक विक्रेता, मित्र एवं शुभचिन्तक प्रस्तुत योजना को सफल बनाने में अवश्य अपना कृपापूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे।

यदि प्रकाशन सम्बन्धी कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो विज्ञ पाठक हमें क्षमा करते हुए सूचित करने का कष्ट करें, ताकि आगामी संस्करण में यथासम्भव संशोधन किए जा सकें।

— राजकुमार मित्तल

अनुक्रम

कथाकार की ओर से . . .	. . . ५
भूमिका (पं. उदयशंकर भट्ट) . . .	. . . ६
१. गौरव की बात . . .	. . . ९
२. रोशनी . . .	. . . १२
३. लघुता की महानता . . .	. . . १३
४. महत्ता का प्रलाप . . .	. . . १४
५. जिन्दगी क्या है ? . . .	. . . १५
६. वो डूबे हुए जहाज़ . . .	. . . १६
७. ज़रा सी देर . . .	. . . १८
८. मेल जोल . . .	. . . २०
९. मुक्ति का उन्माद . . .	. . . २२
१०. तमाचा . . .	. . . २५
११. मैं रोया था ! . . .	. . . २७
१२. वो ध्रुव . . .	. . . २९
१३. अपना पराया . . .	. . . ३२
१४. भ्रम का सत्य और सत्य का भ्रम . . .	. . . ३४
१५. तूफ़ान और शांति . . .	. . . ३७
१६. पेड़ और तिनका . . .	. . . ४१
१७. तर्क जहाँ अवाक् था . . .	. . . ४४
१८. बादशाह बाबर का नया जन्म . . .	. . . ४७
१९. 'कुह-कुह' . . .	. . . ५०

२०. रुपया और रोटी	...	... ५८
२१. रहस्योद्घाटन	...	... ६२
२२. बहार की मौत	...	... ६५
२३. कसौटी १-२	...	... ६८
२४. नशे १-२	..	... ७०
२५. सूर्य सम्राट	...	... ७३
२६. मनुष्य और पत्थर	...	... ७६
२७. अकाल	...	... ८२
२८. रंगरेज़	...	... ८७
२९. कहानी और लघुकथा (निबन्ध)	...	... ९६

कथाकार की ओर से

ये “पंखुड़ियाँ” मानस के उन पुष्पों की हैं, जो अनुभूतियों और भावनाओं की सरसता से सींचे गये विचारों के पौधों पर खिला करते हैं—मगर रोज़ रोज़ नहीं। और वे जब खिलते हैं तो मानस का ओर छोर अपनी सुरभि से लबालब भर देते हैं; और भरकर छलक पड़ने की उनकी आकुलता फिर भीतर समा नहीं पाती; और कोरे कागज़ों पर उनके अक्स बरबस उतर आते हैं।

अपने उन्हीं मानस पुष्पों की पंखुड़ियों में से कुछ को चुनकर यहाँ इस विश्वास के साथ संकलित कर रहा हूँ कि इन्हें “कथा” की शास्त्रीय संज्ञा की व्यापक परिधि के अन्तर्गत स्वीकार किया जायेगा।

यदि कहीं कोई त्रुटि या कोई नया सुझाव मुझे प्राप्त हो सका, तो मेरी विनम्र जिज्ञासा उसे उपकार की तरह ग्रहण करेगी।

मैं श्रद्धेय पं. उदयशंकर भट्ट का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी मेरी प्रार्थना पर प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका लिख दी।

विगत दस बारह बरसों में यदा कदालिखी गयी ये कथाएँ प्रस्तुत रूप में आपके सम्मुख लाने का श्रेय मेरे मित्र श्री. राजकुमार मित्तल को है।

अन्त में इन कथाओं से यह आशा रखना भी मैं व्यर्थ नहीं समझता कि ये उच्च कक्षाओं में पढ़नेवाले विद्यार्थियों से लेकर नवसाक्षर प्रौढ़ों तक और साहित्य प्रेमियों से साहित्य मनीषियों तक—सबकी प्रीतिभाजन बनने में समर्थ हो सकेंगी।

आकाशवाणी, नागपुर

—“भृंग” तुपकरी

भूमिका

इन लघुकथाओं के लेखक श्री भृंग तुपकरी को जानने का अवसर मुझे बहुत दिन पहले मिल चुका है। मैं उन्हें नाटक लेखक के रूप में पहचानता आया हूँ। नागपुर आने पर उनका कवि रूप भी देखा, फिर उनका एक उपन्यास भी मुझे पढ़ने को मिला। आज लघुकथाकार के रूप में वे जनता के सम्मुख प्रस्तुत हो रहे हैं। उनकी लघुकथाएँ पढ़कर उनके वे सब रूप जैसे दब गये। इसका यह अर्थ नहीं कि वे कवि या नाटककार के रूप में प्रमुख नहीं रहे हैं।

इन लघुकथाओं में मैंने लेखक की जिस उत्कृष्ट प्रतिभा का दर्शन किया है उसपर मैं बहुत कुछ न कहकर केवल इतना कहना चाहूँगा कि श्री तुपकरी ने इन लघुकथाओं में जीवन के जिन सत्यों का दर्शन किया है वे निश्चित ही साहित्य में अपना स्थायी महत्व रखते हैं। इस प्रकार की लघुकथाओं में प्रतिभा की पारदर्शिता की आवश्यकता होती है। वैसे सूझ बहुत सी इन लघुकथाओं में पाठकों को मिलेगी। मैंने खलील जिब्रान की इस तरह की लघुकथाएँ पढ़ी हैं, जो जीवन के पारदर्शी सत्य के लिये विश्व-साहित्य में प्रसिद्ध हैं। वे कथाएँ जैसे कुछ वाक्यों, कुछ शब्द-विन्यासों से उभरकर एक ऐसा जीवन्त सत्य दे देती हैं कि हम मुग्ध रह जाते हैं और कवि के प्रतिभा-चमत्कार की अमिट छाप मानस-पटल पर अपना स्थान बना लेती है। ऐसी लघुकथाओं का साहित्य में सदा से एक विशिष्ट स्थान रहा है। न यह कविता है, न गद्यकाव्य, न और कुछ। वस्तुतः यह कवियों का सत्य निरीक्षण है। कबीर ने ऐसे ही सत्यों को अटपटे छंदों में बाँधा है, किन्तु यह वह सत्य है, वह उपदेश है, वह मर्म चित्रण है जो असाधारण कवि द्वारा ही प्रकट होता रहता है।

साधारणतया प्रत्येक इस प्रकार की लघुकथा जड़ प्रकृति, मानस

चेतन, विश्व की प्रत्येक मूलभूत क्रिया से सार निचोड़कर बनती है। वह शब्द-चित्र भी है, कथा-चित्र भी। एक तरह से शब्द रेखाओं का वह जीवन्त दर्शन है, जिसमें परा अपरा के दोनों तत्व ग्रथित होकर मनुष्य को सचेतन करते हैं। इसीलिए एक तरह से यह उपनिषद काल के जनक, याज्ञवल्क्य, गार्गी की परम्परा के सूत्र प्रतीक हैं, जो विभिन्न साधु सन्तों तपस्वियों के चिन्तनोद्भूत काव्य शैली के स्मारक हैं। इसी कड़ी में रानकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, विश्वकवि रवीन्द्र भी आते हैं।

निश्चय ही आज की लघुकथाओं में पहले की अपेक्षा काव्यात्मा का अधिक निवास है। श्री तुपकरी की इन लघुकथाओं में यह गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। कहीं कहीं ये भले ही उतनी मार्मिक न हों तथापि इनकी अभिव्यक्ति की अपनी विशेषता अपना प्रभाव स्थापित करने से नहीं चूकती। उन्होंने कथा की शैली में निरीक्षण द्वारा वस्तु को पकड़ा है और अनेक स्थलों पर वह पकड़ बड़ी गहरी है। रीशनी, लघुता की महानता, जिन्दगी क्या है? जैसी लघुकथाएँ अपनी गहन अभिव्यक्ति के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। गौरव की बात, नशे कसीटी, दो डूबे हुए जहाज, बादशाह बाबर का नया जन्म आदि कुछ लघुकथाएँ तो अपनी तुलनात्मक पद्धति के कारण बहुत ही पैनी बन पड़ी हैं। तुलनात्मक शैली में ऐसी लघुकथाएँ मुझे पहले पहल ही पढ़ने को मिली हैं। कहना नहीं होगा कि यह शैली तुपकरी जी की अपनी शैली है और इसके कारण इन लघुकथाओं की अभिव्यंजना बहुत अधिक पैनी हो गयी है।

तुपकरी जहाँ नाटककार हैं, कवि हैं, वहाँ वह एक सुन्दर चित्रकार भी हैं। चित्रकार समझ सकता है, कौन रेखा कितनी बड़ी, कितनी पतली, कितनी मोटी, कितनी वर्तुल होकर चित्र में जीवन डाल सकती है? वह समझ सकता है, तूलिका का कौनसा स्पर्श अभीप्सित रूप भर सकता है? उसे प्राण और कहीं से लेने नहीं जाना पड़ता। वह तो उसकी कूची के जड़ रंगों में सोता रहता है, केवल मात्र आकृति रेखांकन की आवश्यकता को जानने की सतर्कता अपेक्षित होती है। इन लघुकथाओं

में चित्रकार के शब्द स्पर्शों द्वारा अंकित आकृतियों के वैसे ही रूप हैं, जो चित्र में रहते हैं। कहीं वह स्थूल भी हैं।

ये लघुकथाएँ जहाँ काव्य चित्र हैं, वहाँ जीवन चित्र भी, जो पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं।

‘मिट्टी की महक’ शीर्षक एक पूरे नाटक के पश्चात् श्री भृंग की लेखनी का यह दूसरा चमत्कार है जो प्रकाश में आ रहा है।

मैं उनकी इस कृति का सादर अभिनन्दन करता हूँ। मुझे विश्वास हो रहा है, यदि निपीड़ित यह लेखक संघर्षों से जूझकर अपनी प्रतिभा को बनाये रख सका, तो भविष्य की पैनी दृष्टि इसका साथ देगी।



(कथाकार)

अपने नन्हें रज्जू की स्मृति में
ये नन्हें कथाएँ
रानी को—

गौरव की बात

सेठ करोड़ीमल की पाँच मंज़िल की कोठी है !

गन्नू धोबी का एक कच्चा मकान है !

सेठजी को कई मंज़िलें उतरनी हैं, गन्नू को कई मंज़िलें चढ़नी हैं; मगर सेठ और गन्नू में एक बात का अद्भुत साख्य है। और दोनों उसे अपने लिये गौरव की बात समझते हैं। सेठ को अपने पुत्र की शादी के सिलसिले में एक ऐसी बात सूझी जो शहर भर में किसी और सेठ को अब तक नहीं सूझा थी।

अपनी कोठी की पाँचवी मंज़िल की खुली छत पर मेहमानों के मनोरंजन के लिए उन्होंने बीस हजार में एक प्रसिद्ध फिल्म स्टार का नाच और गाने का कार्यक्रम तय किया। रुपया पानी की तरह बहाकर भी वे मन ही मन फूले नहीं समा रहे थे। आखिर बेटे की शादी थी, कोई मज़ाक थोड़ी ? फिर अपने बड़प्पन की धाक जमाना भी तो कोई मामूली बात नहीं।

नीकर चाकर भिड़ गए। बात की बात में पाँचवी मंज़िल की खुली छत पर सारा साज सामान सज गया। मेहमान जमे। सेठजी अपनी आदत के अनुसार मूछों की कोर पर हल्का हल्का हाथ फेरते हुए मेहमानों के प्रशंसापूर्ण शब्द अपनी मुस्कुराहटों में भेल रहे थे। कोई मुँहफट उन प्रशंसा के शब्दों को 'खुशामद' की संज्ञा दे दे तो भी हमें कोई आपत्ति न होगी; मगर हम

ऐसा नहीं कहेंगे क्योंकि इस पर सेठ और उनके सम्माननीय मेहमान आपत्ति कर सकते हैं।

गन्नू धोबी अपने टोले में उस्ताद के नाम से पुकारा जाता था। और अपने रुतबे की रक्षा करने में वह अपने को सचमुच उस्ताद समझता भी था। अपने लड़के की शादी में उसे भी उस्तादी का ताव कुछ ऐसा चढ़ा कि बात की बात में मंडप के तले 'पतुरिया' नचाने का संकल्प हो गया। सारी बिरादरी के अलावा दोस्त भाई और तमाम चेले चाटियों पर रौब गाँठने का बेटे की शादी से अच्छा दूसरा कोई मौका भला और कब आता ?

बस, चेले चाटी भिड़ गये। सत्रंजियाँ और गोनियाँ बिछ गयीं। पलक मारते में सारा ताम जाम तैयार। लोग आ जुटे। गन्नू बड़े ताव से बार बार आजू बाजू के लोगों की तरफ देखकर अपनी लम्बी लम्बी मूछों को ऐंठने लगता। सब लोग आतंकित के से स्वर में उस्ताद की प्रशंसा करते नहीं अघा रहे थे।

बड़े हाव भाव से, बड़े ठाठ बाट से, बड़ी इंतजारी के बाद फिल्म स्टार महोदया की नाजुक सी अदा ने महफ़िल में कदम रक्खा। लोगों के चेहरों की कलियाँ जैसे खिलकर फूल बन गयीं। मेहमानों के वासनासिक्त हर्ष पर एक अवाक् सी बना देनेवाली भावना की लहर सी दौड़ गयी।

इधर गन्नू उस्ताद के यहाँ "पतुरिया" ने भी बड़ा इंतजार करवाया। लोग अपनी बेकरारी को गन्नू के गुण गौरव का गान करने में छिपा रहे थे। आखिर तांगा आ ही गया। पतुरिया को लिवाने के लिए गन्नू का जो शागिर्द गया था, उसके चेहरे से ही पता चल जाता था कि वह अपने को कितना गौरवशाली

समझ रहा है। आखिर बड़े हाव भाव से, ठाठ बाट से पतुरिया ने मंडप में पैर रखा। उसके एक एक कदम पर जुटी हुई महफ़िल में यहाँ से वहाँ तक हलकी हलकी गौरवपूर्ण ध्वनियों की लहरें सी उठ जातीं।

सेठ जी की पाँचवी मंज़िल बहुत ऊँचे पर है।

गन्नू उस्ताद का मंडप बिलकुल नीचे है।

उसी समय सेठजी की कोठी में और गन्नू के पड़ोस की पान की दूकान में एक साथ रेडियो पर कोई नेता बोलने लगा—
“हमारा समाज पतन की पराकाष्ठा को पहुँचता जा रहा है।... उसे रोक थाम की बड़ी.....”

....बस, सेठजी ने बड़ी फुर्ती से रेडियो के कान ऐंठकर उसे चुप करते हुए कहा—“अब तो गाना होगा!”...

....और इधर गन्नू के पड़ोस की पान की दूकान पर पान की पीक मुँह की मुँह में भरे हुए गन्नू के एक शागिर्द ने डाँटा—
“अबे बंद कर, गाना चलेगा अब तो।”

....और हम जानते हैं, अभी सेठ जी को कई मंज़िलें उतरनी हैं... और गन्नू को कई मंज़िलें चढ़नी हैं।

रौशनी

एक दिन मेरे कच्चे मकान के झरोखे में से आकर ताल पर रखे, बुझे हुए चिराग से दिन के प्रकाश की एक पतली सी रेखा ने व्यंग्य करते हुए पूछा,—“हे मिट्टी के कुप्पे ! मेरी समझ में नहीं आता कि यह तेरा काला काला मुँह रात के अँधेरे में कैसे रोशनी बिखेरता होगा ?”

चिराग ने तपाक से उत्तर दिया,—“बेहतर होता यदि यह प्रश्न तुम काले मुँह वाली उस रात से करते जिसकी अँधेरी गोद में तुम्हारा उजला मुँह सबसे पहले दमक उठता है।”

...और थोड़ी देर बाद मैंने अचम्भे से देखा कि वह किरण-कन्या झंपती हुई सी धीरे से खिसक गयी और वह कुप्पा वहीं बैठा बैठा मुस्कराता रहा !

लघुता की महानता

दोपहर की मृत्यु के बाद सन्ध्या ने अवनी पर कदम रखा। अपने वैभव को ढलता देखकर स्वाभाविकतया सूर्य तमतमा उठा था। सन्ध्या को देखते ही वह उस पर झल्ला उठा,—“तू मेरी महानता को लघुता में परिणत करने क्यों आयी ?”

सन्ध्या इस पर हँस पड़ी। उसने बड़ी नम्रता से कहा,—“लघुता की महानता दिखलाने के लिये; नन्हें नन्हें दीपों की महता संसार को समझाने के लिये।”

सुनकर सूर्य का सारा रोष ठंडा पड़ गया। उसने सम्मान सहित नियति के नियम को नमस्कार करके सन्ध्या से विदा माँगी।

सन्ध्या की गोद में नन्हें नन्हें तारे मुस्कुरा उठे; लघु लघु दीपक खिलखिला पड़े।

जिंदगी क्या है ?

एक जिज्ञासु ने पूछा—“जिन्दगी क्या है ?”

एक गधे ने, जो चरते चरते पेट भर चुका था, गर्दन उठाकर जवाब दिया,—“हरी घास ।”

पास ही एक सूखा दरख्त खड़ा था । वह बोल उठा,—
“नहीं ! गधा झूठ बोलता है । दरअसल बहार का नाम जिन्दगी है ।”

उसी दरख्त के नीचे एक मुसाफिर चलते चलते थककर विश्राम के लिये बैठ गया था । उसने इनकी बातें सुनीं तो तनिक मुस्कुराकर कहने लगा,—“ग़लत ! जिन्दगी तो एक सफ़र है ।”

लेकिन जिज्ञासु का मन कोई संतोष नहीं पा सका ।

तभी एक लकड़हारा उधर से निकला । उसे रोककर जिज्ञासु ने उससे पूछा,—“भाई, क्या तुम जानते हो, जिन्दगी क्या है ?”

लकड़हारे ने कुल्हाड़ी कन्धे पर रखे रखे ही जवाब दिया,—
“क्या तुमको और कोई काम नहीं है ?”

मेरे दिल की तह में वेदना भरी एक हल्की हल्की हलहल
सी मचा देती है,

और एक धुंधले से अवसाद की छाया सी मन को घेर
लेती है,

मगर उस सैनिक जहाज़ के डूबने का मुझे तनिक भी
अफ़सोस नहीं होता ।

दोनों जहाज़ों से मेरा कोई नाता नहीं,

मगर फिर भी मेरी सहानुभूति यह पक्षपात क्यों
करती है ?

क्या आप नहीं जानते ?

यही पक्षपात तो इन्सानियत की ज़िन्दगी का सहारा है !

ज़रा सी देर

सबेरे ही सबेरे चौराहे की होटल के सामने भीड़ जमा होने लगी। और इतने आदमी इकट्ठे हो गये कि रास्ता रुक गया।

एक सेठ साहब की मोटर आई—भोंपू बजाती हुई। ड्राइवर ने कुछ कौतूहलवश और कुछ भीड़ की वजह से गाड़ी की चाल धीमी कर दी, तो सेठ जी नाक और मुँह पर रुमाल रखकर भुँभुला पड़े—“अरे, गाड़ी क्यों रोकते हो ? हार्न बजाते हुए चले चलो। तुम्हें मालूम नहीं, ज़रा सी देर में कितना नुकसान हो सकता है !”

मोटर भीड़ को चीरती हुई आगे बढ़ी।

सेठ साहब ने भीड़ पर कोई ध्यान नहीं दिया।

एक महोदय साइकल की घंटी बजाते हुए आये। भीड़ देखकर रुके। वे किसी आफिस के क्लर्क थे। थोड़ी देर भीड़ में उचक उचककर देखने का प्रयास करते रहे। फिर एक परिचित से बोले—“क्या बात है?”

जवाब मिला—“कुछ नहीं। होटल के कारीगर को मिरगी आ गयी। भट्टी पर गिर पड़ा। बेचारे के हाथ भट्टी में भून गये और सिर कढ़ाई के तेल में।”

कलक महोदय आश्चर्य से नेत्र विस्फारित करते हुए बोले
—“अरे ! कब ? क्या मर गया ?”

“हाँ, अभी थोड़ी देर हुई। भट्टी पर से उसकी लाश उठाई गयी।”

थोड़ी देर वह अचरज में पड़ा बातें करता रहा और फिर हाथ की घड़ी पर नज़र डाल कर बोला,—“अच्छा भाई, चलूँगा। अभी तरकारी लेकर पहुँचूँगा, तब भोजन बनेगा। नहीं तो आफिस को देर हो जायेगी।”

और वह चल दिया !

एक कुली जा रहा था। भीड़ को देखकर ठिठका। रुका ही नहीं, भीड़ में घुस भी गया। होटल के नौकर की डरावनी लाश देखकर वह अफसोस के साथ लम्बी साँस खींचता हुआ आर्द्र स्वर में बोला—“अरे अरे, चू-चू ! बेचारा मर गया ! कितनी बुरी तरह जल गया है ! क्या वालबच्चों वाला था ?”

लेकिन उसकी बात का जवाब किसी ने नहीं दिया। थोड़ी देर बाद वही फिर लम्बी साँस खींचकर बोला,—“आदमी का, आदमी के जीवन का कोई भरोसा नहीं। अच्छा-भला चलता फिरता आदमी ज़रा सी देर में पट से मर जाता है ! सब भगवान की माया है। ज़रा सी देर में क्या से क्या हो जाता है !”

होटल का मालिक कह रहा था,—“बस, थोड़ी सी देर हो गयी भट्टी पर पहुँचने में; नहीं तो शायद बच जाता !”

पास ही गंदे चीथड़ों में लिपटी एक औरत घूँघट काढ़े रो रही थी। उसकी गोद में एक नन्हा बच्चा भी था, जो माँ की सूरत देख देखकर बार बार रो पड़ता था।

मेल-जोल

एक बार एक घर की छत के खारैलों में और नींव के पत्थरों में एक बात पर बहस छिड़ गयी। होते होते नींव के पत्थरों ने कहा,—“खारैल रे खारैल ! घर के सिर पर होने के कारण, सुना है कि तू आने को बड़ा और ऊँचा समझने लगा है। सुना है, तुझे तेरे ऊँचेपन का अभिमान हो गया है ! मगर हम कहे देते हैं, तुम्हारा यह अभिमान किसी दिन तुम्हें धूल में मिला देगा ! ”

खपरैलों ने जवाब दिया,—“ तुमने सुना तो ठीक है; मगर उसमें आधा सच है, आधा झूठ ! ”

“कैसे ?”—नींव के पत्थरों ने पूछा।

“ इतना तो सच है कि मैं ऊँचा हूँ। कोई अंधा भी इस सचाई को देख सकता है। मगर यह सच नहीं कि मुझे इस ऊँचाई का अभिमान है। तुमसे यह किसने कहा ? ”

“ उस दिन दीवारें कह रही थीं । मगर हम भी तो समझ सकते हैं, हमारे पास भी तो दिमाग है । दीवारों पर तुम भले ही रोब गाँठ लो, मगर हमारे साथ यह कुछ नहीं चलेगा । ”

खपरैल हँस पड़े,—“अरे मूर्खों ! वह तो दीवारों को अपने आप पर अभिमान हो गया था, और उनके अभिमान का दमन उनकी और अपनी भलाई के लिये करना जरूरी था,

इसलिए हमने उनसे मजाक में वैसा कहा था। और सचमुच अगर हम उन पर रोब नहीं गाँठते, तो किसी रोज़ वे हमें अपनी खोपड़ी पर से उतार फेंकने का आंदोलन छेड़ देतीं ! ”

“ वह चाहे कुछ हो, मगर हम कहे देते हैं, कि तुम्हारा अभिमान हम चाहें तो पल में मिट्टी में मिला दें । ”

“ वह चाहे कुछ हो !.... मगर इन शब्दों से तो जान पड़ता है कि तुम्हें भी अपने बारे में कुछ भ्रम हो गया है। तुम भी अपने आपको ज़रूरत से ज्यादा महत्वपूर्ण समझ बैठे हो ! तुम्हें भी शायद अभिमान का काला कुत्ता सूँघ गया है ! ”

“ हुँ : इसमें कहने की बात ही क्या है ? हमारे बूते पर तो यह घर का घर खड़ा है। अगर हम हट जायँ तो यह दीवार और तुम.... पल भर में धराशायी हो जाओ ! तुम्हारा अभिमान और तुम, दोनों धूल में मिल जाओ। तुम समझते क्या हो हमें ? अपनी ताकत का अनुमान करके किसे नाज़ नहीं होता ? ”

“ क्या बात करते हो ? तुम हमें क्या खाक में मिलाओगे ! ”

“ अच्छा, देखना चाहते हो हमारी ताकत ?.... तो लो.... ” और यह कहते हुए नींव के पत्थर एक एक करके निकल निकलकर अलग खड़े होने लगे ।

देखते ही देखते दीवार गिर पड़ी। छत के खपरैल भी धराशायी हो गये। तब रास्ते की धूल खिलखिलाकर हँस पड़ी,—“ दोनों मूर्ख हैं ! दोनों की तनातनी ने पूरे मकान को तबाह कर डाला ! ”

खपरैल तो धराशायी हो ही चुके थे, मगर नींव के पत्थरों का महत्व भी रास्ते की धूल फाँक रहा था ।

पागलप कौन दूसरों पर लादने की यह चेष्टा बुरी है।
रुको, और देखकर चलो कि तुम्हारी स्वतंत्रता किसी और
की शांति और स्वातंत्र्य को कुचलना तो नहीं चाहती ?”
पवन आवेश में था।

अपने वेग को क्षण भर के लिए रोककर, चिल्लाकर बोला,
—“ मेरे मार्ग में बाधा बनकर खड़े होने की चेष्टा मत
करो। मैं सरपट सब को पार कर के अपनी दिशा में
जाऊँगा। मुझे कोई रोकने की हिम्मत न करे। मैं मुक्त
हो गया हूँ। मैं मुक्त हूँ और अपनी शक्ति के सम्पूर्ण वेग
को समेटकर उस दिशा में जा रहा हूँ, जहाँ मुझे फिर कोई
बन्दी न बना सके। मुझे जाने दो !”

और वह उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही आगे बढ़ गया।
ऊँचे पेड़ों ने पत्तों की अँगुलियाँ फड़फड़ाकर कहा,—“ हम
पर अन्याय मत करो ! अन्याय मत करो !”

पवन ने पुनः अभिमान से कहा,—“ हम स्वतंत्र हैं ! हम
हर कार्य के लिये स्वतंत्र हैं !”

पेड़ों ने कहा,—“ तुम्हें अपनी स्वतंत्रता जितनी प्रिय है,
उतनी ही हमें हमारी शांति प्रिय है।...तुम्हारी स्वतंत्रता
भंग होने पर तुम्हें जितना दुःख हो सकता है, उतना ही
हमें हमारी शांति भंग होने पर होता है। ”

किन्तु पवन नहीं माना। वह बढ़ता ही गया।

पत्ते टूट टूटकर उड़ गये, फूल झड़ झड़कर मुरझा गये।
किन्तु पवन अमन्द गति से, अपनी बाधाओं को झकझोरता
आगे बढ़ता ही रहा।

तब पहाड़ों की चोटियों पर तपस्वियों की तरह खड़े
व्रस्तपेड़ों ने अपने अस्तित्व को अस्त होने से बचाने के लिये
नीले आकाश की शून्यता में निवास करने वाले भगवान से
अपने कम्पित बाहु उठाकर प्रार्थना की ।

फूल पत्तों ने उस निराकार, निर्विकार के पावन चरणों
पर अपनी श्रद्धा बिखेरकर अपनी नन्हीं नन्हीं आँखों से
आँसुओं के मोती बरसाकर,

पवन के अत्याचार की कथा कही ।

शून्य के स्वामी का हृदय द्रवित हो उठा ।

मेघों की चादर ओढ़कर उसने बिजली के स्वर में कहा,—

“ मेरे नन्हे फूलों और दयनीय पेड़ों ! संसार में किसी की
उन्मत्तता नहीं टिकती । अन्याय आप से आप अपना अन्त
कर लेता है । पवन स्वातन्त्र्य की उन्मत्तता अपने प्राणों में
अधिक काल तक टिकाए नहीं रह सकता । उसके अभिमान
का अन्त अवश्यम्भावी है । रात्रि के कारागार के द्वार में
खोले देता हूँ । वह कितना ही भागे, कितना ही दौड़े ; किन्तु
उसके अत्याचार, उसके अन्याय स्वयं ही उसे पकड़कर इस
कारागार में बंदी बना देंगे । मुक्ति की उन्मत्तता को जो
सँभाल नहीं पाते वे स्वयं अपने हाथ से ही अपनी मुक्ति
को नष्ट कर डालते हैं । पवन की भी यही दशा होगी । ”

और फिर वही हुआ, जो होना था ।

पवन को निशा के बंदीगृह में पुनः बन्दी बनना पड़ा
और पेड़ पौधों की शांति पुनः स्थापित हो गई ।

तमाचा !

अतीत ने काल के गाल पर तमाचा मारकर कहा,—“मैं बूढ़ा होते हुए भी जवान हूँ !” और काल ने वर्तमान के गाल पर तमाचा जड़ते हुए कहा,—“और तू ? तू जवान होते हुए भी बूढ़ा है !”

वर्तमान को गुस्सा आया । उसने चाहा कि इस बात का करारा जवाब दे । मगर उसका जवाब दिल का दिल में ही घुट घुटकर रह गया—उसकी ज़बान खुलने का नाम तक न ले सकी । उसे चुप देखकर काल खिल खिलाकर हँस पड़ा । वर्तमान गुस्से से लाल हो उठा । उसने अपने समय की सबसे बड़ी मशीनें, सबसे बड़े अस्त्र काल पर चला दिये और कहा,—“देख, मेरी भी शक्ति देख ले !”

काल और जोर से हँस पड़ा । उस पर इन अस्त्रों का कोई असर नहीं हुआ । वह बोला,—“अरे मूर्ख, ये तो मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते । तेरे ही मित्र होकर ये अलबत्ता तेरा ही सर्वनाश कर देंगे ! अपने ही ऊपर चलाने के लिये मेरी प्रेरणा से जो हथियार तूने बनाये हैं, उन्हें मुझ पर चलाने से कोई लाभ नहीं । मैं मानता हूँ, कि तेरे पास विचार हैं, लेकिन मुझ पर चलाने योग्य एक भी हथियार नहीं । वर्तमान ने खिसियाकर पूछा—“मुझमें कौनसी कमी है ?”

२६ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ पंखडियाँ

मैं रोया था !

एक बार मैंने एक बड़े भयानक आदमी से मुलाकात की। प्रथम दर्शन में ही लगा, मानो कठोरता और निर्ममता ने मिलकर उसकी आकृति-प्रकृति की रचना की है। उसकी आँखों के लाल डोरों से, उसके चेहरे पर उभरे प्रत्येक दाग से, प्रत्येक लकीर से, यहाँ तक कि उसकी मूछों और खोपड़ी के प्रत्येक बाल से उसकी क्रूरता टपकती थी। वह साक्षात् क्रोध का अवतार था। जान पड़ता था; जैसे युग युग से संचित निर्ममता ने एक साकार रूप धारण कर लिया है। उसके अत्याचार, उसकी निर्ममता की कहानियाँ सुनकर, उसे देखकर और उसके बारे में सोचकर मेरे आँसू निकल आये।

इस पर मेरे कुछ कोमल प्रवृत्ति के मित्र बोले,—तुम डर गये हो!

मुझसे ईर्ष्या रखनेवाले मेरे साथी बोले,—यह तो जन्मजात कायर है !

मेरे एक तथाकथित साथी मित्र ने कहा,—अपने स्वभाव को इतना कोमल क्यों बना रखा है तुमने ? ज़रा सी बात देखकर तुम रो पड़े। संसार में वीभत्सता तो इससे भी भीषण स्वरूप में विद्यमान है।

और कुछ नज़दीक के मित्र, जो मेरे स्वभाव को पहिचानने का अक्सर दावा किया करते हैं, कह पड़े,—नहीं भाई, तुम क्या

दो ध्रुव

सदियों बाद एक बार एक चौराहे पर दो व्यक्ति मिले । जी हाँ, वे दोनों ऐसे ही व्यक्ति थे जो सदियों बाद कभी आपस में मिला करते हैं । यद्यपि वे सदियों बाद मिले थे, तथापि उनकी भेंट अप्रत्याशित रूप में एकाएक हुई थी । वे दोनों मानस जगत के दो ध्रुवों के निवासी थे और इसी कारण उनका मिलना असम्भव के समीप होता ।

दोनों जब मिले तो दोनों ने अपने सदियों के अनुभव एक दूसरे को सुनाये । दोनों असामान्य थे और दोनों की बातें असामान्य थीं । दोनों भ्रमित थे और दोनों बुद्धिमान ।

एक ने अपनी स्वभावगत नम्रता से मधुर और गम्भीर वाणी में अपनी आत्म-ग्लानि अभिव्यक्त करते हुए कहा—
“सदियों के अनुभव के उपरान्त मैं समझा हूँ कि मैं बड़ा स्वार्थी हूँ । अपनी स्वार्थ-बुद्धि की प्रेरणा से ही मैं अपनी आत्म-शुद्धि का ध्यान सारी दुनिया से अधिक रखता हूँ । अपनी आत्म-शुद्धि का मेरा मोह किसी वेश्या की कुत्सित भावना से कम तीव्र नहीं । किसी विलासी रईस की भोग-विलास की इच्छा जितनी दृढ़ और उत्कट हो सकती है उससे भी अधिक उत्कटता और दृढ़ता मैं अपनी इस इच्छा में अनुभव करता हूँ । किसी लोभी बनिए की इच्छा चाहे सारी दुनिया की सम्पत्ति प्राप्त कर लेने पर संतुष्ट हो जाय किन्तु मेरा लोभ संवरण होने की बजाय

दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता है और मैं और अधिक आत्म शुद्धि की आवश्यकता अनुभव करता जाता हूँ। मेरा स्वार्थ, मेरी लोलुपता, मेरा मोह, मेरा लोभ, बड़ा प्रबल है भाई ! मैं कितना नीच हूँ ! शायद इसी कारण मैं परमात्मा को अप्रिय हूँ ! ”

इस पर दूसरे ने अपने स्वभावगत अभिमान से, कठोर और छिछली वाणी में अपने आत्मगौरव का गुणगान करते हुए कहा—“और महाशय ! सदियों के अनुभव के बाद मैंने यह समझा है कि मुझसे बड़ा परमार्थी दूसरा कोई नहीं है । अपनी परमार्थ-बुद्धि की प्रेरणा से ही मैं अपनी आत्मा को मलिन करने का ध्यान सारी दुनिया से अधिक रखता हूँ । मेरी मलिनता दुनिया के तख्ते से जीवन की लम्बाई को कम करके मानव को शीघ्रातिशीघ्र जीवन्मुक्त करने को चिन्तित रहा करती है । अपनी आत्म-मलिनता की मेरी तपस्या किसी सती-साध्वी की पति-परायणता की भावना से कम तीव्र नहीं । किसी त्यागी संन्यासी की त्याग-भावना जितनी दृढ़ और उत्कट हो सकती है, उससे भी अधिक उत्कटता और दृढ़ता मैं अपनी इस भावना में, इस इच्छा में पाता हूँ । किसी साधु-महात्मा की इच्छा चाहे सारी दुनिया की सत्य-सम्पत्ति प्राप्त करके शान्त हो जाय, मगर मेरी विशालता, मेरी व्यापकता सारी दुनिया का विलास प्राप्त करके भी संतुष्ट और शान्त नहीं होगी—अपने आपको पूरी तरह माप नहीं सकेगी, मर नहीं सकेगी । मैं उसकी पूर्ति की गुंजाइश हर पल अधिक से अधिक अनुभव करता जा रहा हूँ । मेरा परमार्थ, मेरा त्याग, मेरी तपस्या, मेरी विशालता और मेरी व्यापकता बहुत बड़ी है । मैं कितना महान् हूँ ! शायद इसी कारण दुनिया को अप्रिय हूँ ! ”

और दोनों ने मन ही मन अनुभव किया कि दोनों के बीच केवल एक पतला सा पर्दा मात्र है, छोटी सी दीवार मात्र है। और दोनों ने अपने अपने मन से प्रश्न किया,—‘तो क्या सचमुच हम एक दूसरे के इतने नजदीक हैं? क्या हमारी दो ध्रुवों की दूरी हमारा भ्रम मात्र है?’

और तभी कोई भीतर ही भीतर मुस्कुरा दिया,—‘नहीं, तुम दो ध्रुवों के निवासी हो। और तुम्हारे बीच एक बहुत बड़ी दूरी है। और तुम सदियों बाद ही कभी कभी आपस में मिला करते हो!’

और फिर दोनों अपने अपने निवास स्थानों को लौट गये।

और संसार ने एक की चरण धूलि उठाकर मस्तक पर चढ़ा ली और दूसरे की राह पर देखकर घृणा से मुँह बिगाड़ लिया।

सारा दिन उसने बहुत सर मारा, बहुत प्रयत्न किये, लेकिन सूर्य को दबाना तो दूर रहा, वह स्वयं ही इतना दब गया कि अपना अस्तित्व भी खो बैठा ।

अन्त में स्वयं परास्त एवं लज्जित होकर वह फिर रात्रि की ही शरण में आया—रूआँसा सा मुँह लिये ।

रात्रि उसके वियोग में आँसू बहा रही थी, जो सारे आकाश पर बिखरते जा रहे थे । चंद्र को देखते ही उसने उसे अपने स्नेहांचल में समेट लिया और पूछा,—“तुम कहाँ चले गये थे मेरे लाल ?”

चंद्र फुसफुसाकर रो पड़ा । उसके भी आँसू आकाश में बिखर गये । उसने जवाब दिया,—“माँ, तुम्हें खोकर, तुम्हें खोजने गया था ।”

चंद्र और रजनी के वे ही आँसू उस महामिलन की यादगार बनकर आज भी आकाश में दूर दूर तक फैले हुए नज़र आते हैं ।

समान । मैं तुम्हें ग़लत समझा । अफ़सोस कि मैं वापिस नहीं जा सकता; क्योंकि यहाँ से अब मुझे मेरा पहला स्थान बहुत ऊँचा दीख रहा है और ऊँचा चढ़ने के लिये युगों तक तपस्या करनी पड़ती है; जिसकी सामर्थ्य अब मैं खो चुका हूँ । तुम्हारी जगमगाहट देखकर ही मैं तुममें अपने कालेपन को छिपाने के लिये तुम तक आया था । किन्तु अफ़सोस ! आते आते मैं अपना स्थान, अपना अस्तित्व भी खो बैठा । . . . पहले मैं बहुत बड़ा था, और अब गति के संघर्ष से घिसकर ज़रा सा रह गया हूँ । ”

पास ही पड़े हुए पत्थर ने समवेदना प्रकट करते हुए कहा,— “हाँ भाई, सचमुच, तुमने अपना अस्तित्व, अपना सर्वस्व खो दिया है । ”

पृथ्वी कुछ सोच रही थी । सहसा वह बोल उठी,— “तो क्या सचमुच, दूर से मैं भी चमकती हुई नज़र आती हूँ ? ”

सितारे ने हँधे कण्ठ से कहा,— “लेकिन वह मेरा भ्रम था । ”

फिर भी पृथ्वी रात्रि के अंधकार में आँखें फाड़कर चारों ओर अपनी प्रतिभा को देखने का प्रयत्न करने लगी । उसे अपने आसपास के अँधेरे और अपने कालेपन के सिवा और कुछ नज़र नहीं आ सका । वह झुँझला पड़ी,— “मुझे तो अँधेरा ही दिखायी पड़ता है । ”

सितारे ने कहा,— “मुझे भी ऐसा ही लगता था । ”

* * *

थोड़ी देर पश्चात् सितारे ने समझीते के स्वर में पृथ्वी

तूफ़ान और शांति

एक दिन किसी ने तूफ़ान को समझा दिया कि शांति के कारण ही उसका इतना महत्व है। यदि शांति न रहे तो तूफ़ान की भयंकरता को कोई महसूस ही न करे।

तूफ़ान के अभिमान को एक ठेस सी लगी। वह सोचने लगा,—“क्या यह सच है?”

लेकिन उसके अभिमान ने इस बात को मानने की अनुमति नहीं दी। बहुत दिनों तक वह चक्कर में पड़ा रहा। कुछ निश्चित न कर सका।

फिर कुछ दिनों पश्चात किसी ने उसे बतलाया कि शांति एक महान वस्तु है। वह उससे और उसके अभिमान से भी बहुत बड़ी है। बल्कि किसी ने तो यहाँ तक कह डाला कि शांति उसकी माता है। वह उसकी गोद में जन्म लेता है और उसी की गोद में दम तोड़ देता है।

तूफ़ान का अभिमान तिलमिला उठा। उसे यह बात बहुत बुरी लगी। उसने सिर उठाकर कहा,—“नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।”

कहनेवाले ने कहा,—“तो शान्ति से मिलकर देख लो !”

उसने फ़ौरन बात स्वीकार कर ली और वह अपनी भूली हुई माँ—शान्ति—की खोज में निकल पड़ा।

बहुत भटकने के बाद एक दिन उसे शान्ति की कुटिया दिखायी पड़ गयी। वह उसके पास चला आया।

कुटिया का द्वार बहुत छोटा था और उसके अभिमान का सिर बहुत ऊँचा। उसने साभिमान हाँक लगायी,—“ऐ इस छोटी सी कुटिया की स्वामिनी, बाहर आ। मैं तुझसे मिलना चाहता हूँ।”

भीतर से कोई जवाब नहीं आया।

तूफान ने सोचा, शायद मेरा सिर बहुत ऊँचा होने के कारण शान्ति के कानों तक मेरी आवाज़ नहीं पहुँची।

उसने सिर थोड़ा नीचा करके आवाज़ दी।

इस बार भीतर से एक नम्र ध्वनि आयी,—“बेटा, मेरी कुटिया का द्वार बहुत छोटा है। अपना ऊँचा सिर थोड़ा और नीचा कर और भीतर चला आ।”

उसके अभिमान को एक ठेस सी लगी, लेकिन उत्सुकता का फुन्दा भी उसकी गर्दन को बुरी तरह जकड़े हुए था। उसने अपने अभिमान का सिर थोड़ा और नीचा किया।

भीतर से फिर आवाज़ आयी,—“थोड़ा और....”

वह थोड़ा और नीचे झुका।

फिर आवाज़ आयी,—“थोड़ा और....”

उसका अभिमान फिर तिलमिलाया लेकिन वह फिर थोड़ा और झुका। धीरे धीरे तूफान इतना छोटा हो गया कि द्वार-प्रवेश करना उसके लिये सहज हो गया।

उसने भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उसने शान्ति और उसकी विशाल सौम्यता के दर्शन किये। दर्शन करते ही

वह भूल गया कि वह वहाँ किस काम से आया है ! उसे इस बात पर गौर तक करने का होश नहीं था !

बाहर से छोटी सी दिखायी पड़ने वाली उस कुटिया के भीतर इतनी जगह थी कि उसके जैसे सैकड़ों तूफान भी अगर उसमें समा जाते तो भी पता न चलता कि वे कौन से कोने में हैं ? शान्ति मुस्कुराती हुई दोनों हाथ फैलाकर उससे मिलने के लिये आगे बढ़ी ।

तूफान भी न जाने किस प्रेरणा से किसी नन्हें नटखट बालक की तरह मचलता हुआ सा शान्ति की ओर बढ़ा ।

देखते ही देखते शान्ति ने उसे समेटकर अपनी गोद में भर लिया ।

देखते ही देखते तूफान की चंचलता काफ़ूर हो गयी ।

दूसरे ही पल उसकी और उसके अभिमान की आँखें भँपक गयीं । शान्ति की ममता भरी, विशाल और सुखद गोद में मुँह छिपाकर वह अपने आपको खो बैठा ।

* * *

फिर बहुत दिन बीत गये । शान्ति की गोद में मोद से पड़ा हुआ संसार शान्ति की ही गोद में सोये हुए तूफान का महत्व भूलने लगा ।

तब एक दिन शान्ति ने तूफान को प्रगाढ़ निद्रा से जगाया । उसने बड़े प्यार से कहा,—“बेटा, बहुत सो चुका । अब जाग जा !”

तूफान ने अँगड़ाई लेते हुए पूछा,—“क्यों माँ ?”

पेड़ और तिनका

एक बार ज़ोरों की आँधी आयी ।

बड़े बड़े पेड़ हिल गये । पत्तियाँ उड़ गयीं । धूल आसमान पर छा गयी । ऊँचे ऊँचे मकान डगमगा गये, लेकिन एक ऊँचे पेड़ की जड़ से लिपटा हुआ एक छोटा सा तिनका थर-थराता हुआ यह सब देख रहा था । उसे आँधी न उड़ा सकी ।

यह देखकर उस ऊँचे वृक्ष को बहुत आश्चर्य हुआ । वह सोचने लगा,—“यह कैसी अनोखी बात है कि मुझे जैसे शक्तिशालियों की तो जड़ें हिल गयीं, लेकिन मेरी जड़ से लिपटे हुए इस तिनके का कुछ भी नहीं बिगड़ा !”

धीरे-धीरे वह बड़ा पेड़ मन ही मन उस छोटे से तिनके के प्रति ईर्ष्या के भाव से पीड़ित हो उठा । उसे प्रकृति के इस अनोखे कानून पर भी बेहद गुस्सा आया ।

उस समय वह तिनका भी यही बात सोच रहा था और मन ही मन अभिमान से फूलता जा रहा था । उसने अपने आप ही कहा,—“ओह ! मुझे तो पता भी नहीं था कि मैं इतना अधिक शक्तिशाली हूँ ! मुझे तो आँधी और तूफान तक नहीं हिला सकते ! मेरी शक्ति के आगे बड़े बड़े पेड़ों की शक्ति भी हेय है । मुझे आज अपनी ताकत का परिचय मिल गया । अब मुझे किसी के चरणों में, किसी का शरणागत बनकर रहना शोभा नहीं देता । बल्कि इन पेड़ों को मेरी शरण में रहना चाहिये ।”

यह सोचते सोचते उसने अभिमान से मस्तक ऊँचा उठा लिया। उसके चेहरे पर एक अनोखी आभा फैल गयी।

पेड़ ने उसकी तरफ देखा तो वह झल्ला उठा और बोला,—“क्यों रे, अभिमान से फूल गया है क्या ?”

तिनके ने तड़ाक से उत्तर दिया, “क्यों नहीं ? गर्व होना तो स्वाभाविक ही है ! तुम तो देख ही चुके हो कि मेरी शक्ति कितनी है ?”

“अरे बेवकूफ !”—पेड़ ने झल्लाकर कहा,—“तू मेरी शरण में था, इसलिये मैंने स्वयं नुकसान उठाकर भी तेरी रक्षा की है। नाहक मत फूल ! अगर अपनी हस्ती ही देखनी है, तो मेरी शरण छोड़कर मैदान में निकल !”

तिनके को ताव आ गया । उसने सोचा कि चलो एक बार और अपनी ताकत बतला दी जाय ।

वह अकडकर मैदान में आ गया ।

हवा का एक हल्का सा झोंका आया और वह उड़ चला।
उसके मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं,—“अरे ! यह क्या ?”

पेड हँसने लगा !

उसी दम तिनके के मन से निकलकर अभिमान दूर आ खड़ा हुआ और उसके हल्केपन पर मुस्कुराने लगा ।

पेड़ का मस्तक अभिमान से और अधिक ऊँचा हो गया ।

कई बरस बाद आँधियों के थपेड़ों ने उस पेड़ की शाखाएँ तोड़ डालीं और एक दिन उसके जड़ अभिमान ने समय के

सूखैपन से उसके प्राणों का सारा रस सोखकर उसे घराशायी बना दिया ।

उस दिन फिर अभिमान दूर खड़ा होकर उस पेड़ की तरफ देखकर खिलखिला उठा और थोड़ी ही देर बाद बड़ी लापरवाही से वह कहीं अन्यत्र चल दिया ।

लोग उसका इन्तज़ार करते बैठक में बैठे रहते।

और उस पौधे को अकसर अचम्भा हो जाया करता कि इतना बड़ा आदमी, जिसकी इज्जत करने वालों की कोई कमी नहीं है, जिसे जानने मानने वाले इतने लोग हैं, वह भला मुझ नाचीज़ की तरफ़ इतने अधिक स्नेह की दृष्टि से क्यों देखता है ? मुझ में भला क्या रक्खा है ?

और एक दिन उसने उस बड़े आदमी को टोक ही तो दिया, पूछ ही तो लिया उससे कि वो उसे इतना अधिक क्यों चाहता है ?

और उसके यह पूछते ही उस बड़े आदमी के हाथों में उसके छोटे छोटे काँटे बुरी तरह चुभ गये ।

बड़ा आदमी केवल अवाक् सा उसकी तरफ़ ताकता खड़ा रहा और वह छोटा सा सवाल उसके आगे धीरे धीरे बड़ा भारी पहाड़ सा बन गया !

इस प्रश्न चिह्न के पीछे एक कतार में खड़े सैकड़ों हज़ारों प्रश्न चिह्न उसे दिखायी दिये । मगर उनका एक भी बुद्धिगम्य उत्तर उसके पास नहीं था । उस फूल का सवाल बड़ा बनता गया और वह बड़ा आदमी अवाक् सा खड़ा रहा !

* * *

कई दिन बाद, जब उस पौधे के मुरझाने के दिन करीब आ रहे थे और उसे जिलाये रखने के लिये

वह बड़ा आदमी बेहद चिन्तित था,

तब सहसा ही एक रोज़ एक छोटी सी बकरी बाड़े में घुस आयी और वह उस पौधे को चर गयी ।

४६ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ पंखड़ियां

बादशाह बाबर का नया जन्म

पुराने ज़माने में बाबर नामक एक बादशाह था और आज के ज़माने में नरेश नामक एक क्लर्क है। बादशाह बाबर का हिन्दुस्थान के ओर छोर तक दूरदूरा था और नरेश का अपने दफ्तर के ओर छोर तक। घड़े दौड़ाने में दोनों अपना सानी नहीं रखते। फ़र्क केवल इतना है कि बाबर से नरेश के ज़माने तक आते आते वे घड़े कागज़ी हो गये हैं।

बादशाह बाबर का इकलौता बेटा था, हुमायूँ। उसे वह अपनी जान से भी ज्यादा चाहता था। नरेश का भी एक बेटा था; राजेश—जिसे वह अपनी जान से भी ज्यादा चाहता था। जहाँ तक स्नेह का ताल्लुक है, बाप का दिल दोनों के पास था और दोनों अपने बेटों को बेहद चाहते थे। दोनों के कुल उजागर करनेवाले एक ही एक तो चिराग़ थे। यह कहना कठिन है कि कौन किससे कितना ज्यादा अपने लाल को चाहता था और कौन कितना कम !

एक बार हुमायूँ सख्त बीमार पड़ा। बेटे की बीमारी में बादशाह बाबर ने रात दिन एक कर दिए। ज़मीन आसमान के कुलाबे मिला डाले। दुनियाँ भर से हक़ीम और वैद्य आये। तरह तरह के इलाज हुए, लेकिन कोई फ़ायदा नज़र नहीं आया। हुमायूँ की हालत दिन ब दिन गिरती ही चली गयी।

एक बार राजेश सख्त बीमार पड़ा। बेटे की बीमारी में

पूरी दुआ न माँग सका । उसके बाद उसके बेटे का, उसकी पत्नी का, उसकी बच्चियों का और उसके बूढ़े माँ-बाप का क्या होगा ? उन सब का भविष्य एक खौफनाक मंज़र को लेकर उसकी आँखों में झूल गया और उसकी ज़बान रुक गयी ।

इतनी देर में राजेश के प्राण पखेरू उड़ चुके थे ।

नरेश पागलों की तरह सोच रहा था, काश वह बादशाह बाबर होता ; और काश, बादशाह बाबर उसकी जगह होता !

बादशाह तो निश्चित मर सकता था ; मगर उसे तो मरने के बाद की भी चिन्ताएँ थीं !

“कुह-कुह”

गाँव के किनारे से नदी बहती थी और नदी किनारे एक पुराना आम का पेड़ था। जब बहारें आतीं और वह बूढ़ा पेड़ जवानी के भोंकों में झूमने लगता तब न जाने कहाँ से न जाने कितनी तरह के रंग-बिरंगे पक्षी उस पर आ बसते। कोयल आती। पपीहा आता। मैना आती। तोता आता। और भी न जाने कितनी तरह के पक्षी आते। घोंसले बन जाते। बसेरे लग जाते। चूँ-चूँ, चीं-चीं, कुहू-कुहू, पियू-पियू की धूम मच जाती। दिन भर कलरव होता रहता और रात भर “फड़-फड़” “खड़-खड़” की ध्वनियाँ सन्नाटे के फोड़े कुरेदती रहतीं। पक्षियों की एक दुनिया वहाँ बसी रहती।

एक बार इसी तरह की बहार आयी थी और पक्षियों के बसेरे उस आम के पेड़ पर लग गये थे । दोपहर का समय था । पक्षीगण खेतों की ओर उड़ गये थे । केवल एक कोयल ऊँची डाल पर पत्तियों की आड़ में छिपी हुई “कुहु-कुहु” की मधुर तान आलाप रही थी ।

मौसम शान्त था । आकाश पर मटमैले-मटमैले से बादल बरस कर बिखर गये थे, और तब तरफ चमकीला मटमैला रंग फैला था । दोपहर के सन्नाटे को चीरकर कोयल की मस्ती भरी धुन बीच-बीच में इस तरह जाग उठती थी मानों मटमैले-चमकीले आकाश से रस का स्रोत रह रह कर फूटा पड़ता हो ।

उसी दिन सबेरे न जाने कहां से आकर एक बन्दर उस पेड़ पर ठहरा हुआ था। कोयल ने जब कूक-कूक कर एक समा-सा बाँध दिया तब अनायास ही उसका ध्यान उसकी ओर खिंच गया। उसका पशु-हृदय “कुहू-कुहू” की मधुरता में डूबने उतराने लगा।

उसी समय नदी किनारे एक चरवाहे का लड़का हाथ में पतली-सी लकड़ी लिए हुए अपने मालिक की भैंसों को चरा रहा था। कुछ भैंसों नदी के जल में घुसी हुईं और कीचड़ में सनी हुईं आराम से जुगाली कर रही थीं और कुछ नदी किनारे की हरी-हरी घास चर रही थीं। वह चरवाहे का लड़का उस समय एक नीम के पेड़ के नीचे, अपने साथ लाई हुई रोटियों की पोटली सिरहाने रखकर बिल्कुल निश्चिन्त सा लेटा हुआ था। उसके भी कानों में कोयल की कूक गूँज उठी। उस शान्त प्रहर में रस की फुहार-सी बरस रही थी। उस चरवाहे का अल्हड़ हृदय उस मदमाती बेला में उस कोयल की धुन की ओर आकर्षित हुए बगैर न रह सका। उसकी नज़र आम के पेड़ की ओर घूम गई। वह धीरे-धीरे उठ बैठा। हाथ की लकड़ी उसने ज़मीन पर रख दी। फिर उस आवाज़ से—उस मधुर-सी कूक से—खिंचा-खिंचा-सा वह धीरे-धीरे उठ खड़ा हुआ। उसके कदम आप-से-आप आम के पेड़ की ओर बढ़ने लगे। भैंसे उसी तरह चर रही थीं। उन्हें उस समय चरने के सिवाय दुनिया में और कोई काम नहीं था। कोयल की कूक का उनके कानों पर कोई असर नहीं था। न जाने परमात्मा ने इन भैंसों को कौन-सी मिट्टी से बनाया है? सच ही कहा है किसीने कि भैंस के आगे बीन बजी, भैंस खड़ी पगुराय! लेकिन

से तो उस ओर नहीं बढ़ रहा है ? फिर उसने सोचा कि बन्दर के उसके पास पहुँचने के पहिले ही उसे शोर मचाकर कोयल को उड़ा देना चाहिए। लेकिन फिर विचार आया कि यदि वह कोयल को उड़ा देगा तो फिर उसकी आकांक्षा कैसे पूरी होगी ? उसकी प्यारी बोली वह कैसे सुन सकेगा ? शायद बन्दर उसे तंग करने के उद्देश्य से नहीं बल्कि ऊपर की डाली पर आम खाने के उद्देश्य से जा रहा हो ! और वह सोचता ही रह गया।

अब तक वह बन्दर कोयल के बिल्कुल पास पहुँच गया था। कोयल कभी फुदक कर, कभी वैसे ही बैठे हुए और कभी-कभी आम की किसी छोटी सी कैरी को चोंच से कुरेदकर “कुह-कुह” कर उठती थी। जान पड़ता था, वह अपने-आप में फूली नहीं समाती और अपनी बोली पर आप ही मुग्ध होकर गा रही है। बन्दर उसकी ओर विचित्र दृष्टि से ताक रहा था। चरवाहे ने विचार किया कि शोर मचाकर वह बन्दर को धमकाए किन्तु उसे शंका थी कि यदि वह शोर मचायेगा तो कोयल किसी तरफ उड़ जायगी। अब की बार भी वह सोचता रह गया।

बन्दर अब कोयल से इतना दूर था कि यदि वह चाहे तो हाथ बढ़ाकर कोयल को पकड़ ले।.... अरे ! अरे ! सचमुच उसने तो हाथ बढ़ाकर नहीं, बल्कि झपट कर उसे पकड़ लिया। चरवाहा भौंचक्का सा देखने लगा। अरे ! निर्दयी बन्दर ने आखिर कोयल को पकड़ ही लिया। वह पछताने लगा कि उसने शोर मचाकर कोयल को पहिले ही क्यों नहीं उड़ा दिया; लेकिन अब पछताना बेकार था !

वह करुणाभरी दृष्टि से बन्दर और कोयल को देखने

लगा। कोयल बन्दर के पंजों में फड़फड़ा रही थी और अपने छुटकारे के लिए बुरी तरह चीख रही थी। दो चार पखेरू अपने घोंसलों में उस समय भी थे। कोयल की चीख सुन कर उनमें से प्रत्येक ने अपनी-अपनी गर्दन घोंसलों के बाहर निकाली। बन्दर की कारस्तानी को देखकर वे भयभीत हो उठे और उन्होंने फिर अपने मुँह घोंसलों में छिपा लिए।

चरवाहा चिल्ला-चिल्ला कर बन्दर को धमकाने लगा। लेकिन अब चिल्लाना बेकार था। बन्दर ने एक बार उसकी ओर देखा और गुस्से से दाँत निकालकर “कि-इं-इं-इं-इं” के स्वर में तीव्र गुराहट की। कोयल के कोमल कोमल पर एक-एक करके वह खींच-खींच कर उखाड़ता था; कोयल चीख पड़ती थी, फड़फड़ा उठती थी और वह बड़े ध्यान से टूटे हुए पर को देखकर नीचे फेंकता जाता था। और वह बेजान पंख हवा के झोंकों में निस्सहाय सा इधर-उधर उड़ता हुआ ज़मीन की ओर आता जाता था। चरवाहा नीचे खड़ा-खड़ा करुण दृष्टि से उनको देखता, फिर कोयल को देखने लगता। हाय ! निस्सहाय कोयल !

कोयल की सुरीली तान से वह चरवाहा भी आकर्षित हुआ था और वह बन्दर भी। लेकिन पशु और मनुष्य के आकर्षण में कितना फ़र्क है ! उफ़ ! पाशविक आकर्षण कितना भयानक होता है !

कोयल के दोनों डैने खून से तर-बतर हो गये थे और वह अधमरी सी हो गई थी। चीख-चीख कर वह बेदम-सी हो उठी थी। एक बार, दो बार और तीन बार उसने जोर-जोर से

फड़फड़ा कर छूटने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रही। फिर थोड़ी देर तक बिलकुल शान्त रही। चरवाहे ने समझा कि वह मर गई है; और वह मनुष्यों की अफसोस सूचक बोली में “च्-च्” करके रह गया। मगर फिर एकबारगी वह कोयल बहुत जोर से फड़फड़ा उठी और न जाने कैसे उस बन्दर के हाथों से छूट पड़ी। चरवाहे ने लपक कर उसे अपने हाथों पर भेल लिया। कोयल ‘पशु’ के हाथों से छूट कर ‘आदमी’ के हाथों में आ गिरी। देखें, ‘आदमी’ उसके साथ कैसा बर्ताव करता है ?

चरवाहा कोयल को बड़ी सावधानी से हाथों में पकड़ कर नदी पर ले आया। वह अब भी छटपटा रही थी। उसके घावों को वह अब भी बड़े प्यार से सहला रहा था। सहसा कोयल ने पीड़ा की तीव्रता से कराह कर अपनी चोंच से चरवाहे की अँगुली में काट लिया। चरवाहे ने “उफ़ !” कहकर हाथ झटक दिया; लेकिन कोयल को नीचे गिरने से झट सँभाल भी लिया। अब की उसकी अँगुलियों ने कोयल की गर्दन पकड़ ली और वह एक हाथ से नदी का जल ले-लेकर उसके घाव धोने लगा।

चरवाहा कोयल को अपने घर ले आया। कमचियों के एक पुराने पिचड़े में उसे रखकर दाना-पानी डाल दिया। और फिर उसके घावों को सेंकने, लेप बनाने लगा। आमा हल्दी, प्याज़, चूना और घी को भून कर उसने लेप बनाया और बड़ी सावधानी से आहिस्ता-आहिस्ता उसने उसके घाव को सेंक दिया। कोयल अब भी फड़फड़ा रही थी, तड़प रही थी। आदमी के लिए वे घाव छोटे थे लेकिन उस नन्हीं-सी जान के

लिए वे कितने कष्टदायक थे—यदि कोयल बतला सकती तो अवश्य बतला देती।

एक दिन, दो दिन, दस दिन....और इसी तरह महीना बीत गया। कोयल ठीक हो गई और छोटे-छोटे पर फूटने लगे। इस बीच न कोयल आनन्द से फुदकी और न बोली। बस, चुपचाप गर्दन लटकाये पिंजड़े के एक कोने में बैठी रहती। शायद अपने अतीत की अठखेलियों पर अफसोस करती हुई। चरवाहा बहुत चाहता था कि वह कभी-कभी अपनी प्यारी-प्यारी बोली सुना दिया करे। लेकिन कोयल ने कभी नहीं चाहा कि वह गाना गाये। चरवाहे की चाह केवल चाह बनी रही और कोयल की आह केवल आह !

कई महीने बीत गये। बहार गई और फिर आ गयी। लेकिन कोयल के कण्ठ की कूक वापस न आ सकी। बहार की मस्त हवाएँ उसको छू-छूकर लौट जाती थीं लेकिन उसका उस पर कोई असर नहीं होता था।

चरवाहा रोज़ धैर्य रखता कि आज नहीं तो कल बोलेगी। लेकिन कोई दिन ऐसा नहीं आया, जिस दिन वह बोली हो। धीरे-धीरे धीरज चरवाहे के हाथों से जाता रहा और उसका रिक्त स्थान गुस्से ने ले लिया।

फिर कुछ दिन बीते

और इसी तरह एक दिन गुस्से में आकर उसने कोयल का पिंजड़ा पृथ्वी पर पटक दिया। पिंजड़े की दो-चार कमचियाँ टूट गईं और कोयल उलट-पुलट कर एक कोने में आ रही। वह केवल फड़फड़ाई, बोली नहीं।

चरवाहे ने पिंजड़े का फाटक खोल दिया। डरती-डरती वह बाहर निकली और इधर-उधर ताकती हुई पिंजड़े के ऊपर बैठ गई। उड़ी नहीं। उसको शायद विश्वास नहीं था कि वह उड़ सकेगी। वह मानो समझ रही थी कि उसकी खोई हुई शक्ति वापस नहीं आई। लेकिन तभी चरवाहे ने उसकी गर्दन पकड़कर आसमान की ओर फेंक दिया। ऊपर जाकर आप-ही-आप कोयल के पर खुल गये। उसे ऐसा लगा, मानो वह उड़ सकती है ! फिर भी अपना विश्वास पक्का करने के लिए वह मुँडेर पर आ बैठी। थोड़ी देर बाद न जाने क्या विचार कर वह पर फैला कर उड़ गई—दूर आम के पेड़ की ओर।

दूसरे दिन चरवाहा फिर नदी किनारे पहुँचा, तो उस बन्धन-मुक्त कोयल ने “कुहू-कुहू” के मीठे स्वरों से फिर उसका स्वागत किया !

पंजों को हवा में घुमाता; “कूँ कूँ” की एक रटन सी लगा देता और फिर थोड़ी देर के लिये शान्त सा होकर खड़ा रह जाता। किन्तु बीच बीच में उसकी “कूँ कूँ” कुछ न कुछ मात्रा में मुँह से निकल ही पड़ती थी।

मनुष्य ने अपने हाथ बढ़ाते हुए सोचा,—“पशुओं में भी कुछ पाने की लालसा होती है। देखें यह किसे पसंद करता है; रुपयों को या रोटी को?”

एक हथेली पर चमचम करते हुए रुपये थे और दूसरी पर रोटी का टुकड़ा। कुत्ते ने दोनों हाथों को एक साथ देखा। वह सहसा निश्चय नहीं कर पाया कि किस ओर पहिले बढ़े? फिर भी वह आगे बढ़ गया।

एक ओर चमचम करते हुए रुपये थे और दूसरी ओर रोटी! रोटी वह कई बार देख चुका था लेकिन रुपये उसके लिये नये थे। रुपयों में चमक थी! वह और आगे बढ़ा। किन्तु यह क्या? वह तो सदा की पहिचानी हुई रोटी की ओर नहीं, वरन् पहिले रुपयों की ओर ही गया। उफ़! तो “चमक” में इतना आकर्षण है कि वह एक पशु के मस्तिष्क को भी भुलावे में डाल सकती है?

रुपयों पर वह भुका। और उन्हें सूँघने लगा। तब भी उसकी दुम हिल रही थी—पूर्व पश्चिम। किन्तु वह “कूँ कूँ” बन्द हो गई थी। क्षण भर वह उन्हें सूँघता रहा। और इतने में ही वह समझ गया कि उनमें चमक तो है किन्तु वह खाद्य पदार्थ नहीं है। पर बाहरे मनुष्य! जाने कितने युगों से तू

“हम रुपया देकर कितनी ही रोटियां खरीद सकते हैं।”

“यदि यह सच है कि कुछ लोग रुपया देकर रोटी खरीदते हैं, तो यह भी सच है कि कुछ लोग रोटी देकर रुपया खरीदते हैं और यहीं इन्सान ग़लती करता है।”

“ज़माना इतना आगे बढ़ चुका है जनाब, कि आदमी की ज़रूरतें केवल रोटी की मुहताज नहीं रह गयी हैं ! और न तो अब ज़माने को लौटाकर उतने पीछे ले जाया जा सकता है, जब सामान के बदले सामान लिया दिया जाता था।”

“लेकिन क्या इन्सान इतना आगे बढ़ गया है कि उसने रोटी खाना बन्द कर दिया है ?”

रहस्योद्घाटन

एक दिन रस-सरिता के तट पर पड़े हुए पत्थर ने धारा से कहा,—“तुम रस-सरिता की वेगवती धारा हो, और मैं तुम्हारे तट पर पड़ा हुआ एक नीरस पत्थर ! तुम्हारे तट पर मैं यह आशा लिये पड़ा हूँ कि एक दिन तुम्हारे सहयोग से मुझमें भी रस की धार फूट पड़ेगी—एक दिन तुम मुझमें रस संचार करोगी । न जाने कितने युग बीत गए, मैं तपस्वी की तरह एकाग्रचित्त इसी स्थान पर बैठा हूँ । किन्तु हे चंचले ! तुमने मेरी ओर अब तक भी ध्यान नहीं दिया । तुम अपने सम्पूर्ण वेग से आती हो और मुझे बिजली की तरह छूकर आगे बढ़ जाती हो । तुम्हारे संघात से मैं तिल तिल गलता जा रहा हूँ । किन्तु पता नहीं, कब मुझमें रस-धार फूटेगी ?”

पत्थर की बात सुनकर उस बल खाकर बहती हुई धारा ने उत्तर दिया,—“अरे मूर्ख पत्थर ! पहले अपने निजत्व पर तो ध्यान दे ! फिर मुझे दोष देना । कितने युगों से तू मेरे किनारे पड़ा हुआ है और कितने युगों से मैं तुझे केवल इसीलिए स्पर्श करती आई हूँ कि कभी तुझमें रस संचार हो जाय । पर तेरे गुण ही तो तेरे विरोधी हैं ! शनैः शनैः मेरी तो यही धारणा हो गई थी, कि पत्थर में प्यास होती ही नहीं । किन्तु तेरी बातों से ज्ञात होता है कि तुझमें भी प्यास है, इच्छा है । इसलिए पहले तू अपने विरोधी गुणों को अपने से दूर कर दे, तब आप ही आप

तुझमें रस संचार हो जायेगा। संसार के अन्य सभी पदार्थों में रस किसी न किसी रूप में विद्यमान है। यहाँ तक कि धातुओं में भी—जब वे खूब तपायी जाती हैं, तो रस फूट पड़ता है, वे रसमय हो जाती हैं। किन्तु तू ही एक ऐसी जाति का है जो पसीजना नहीं जानती। इसमें मेरा क्या दोष ? मैं तो अब भी प्रयत्न करूँगी और सदैव करती रहूँगी कि तुझमें भी रस उपजे। और देख, तू भी अपने स्वभाव को बदलने का यत्न करता रह। शायद सफलता मिल जाय। या फिर तू जैसी हालत में है, उसी में संतोष रख। जो बन नहीं सकता, वह बनने का नाहक प्रयत्न ही मत कर !”

पत्थर अवाक् रह गया। किन्तु थोड़ी देर पश्चात् सोचकर उसने गम्भीरता से कहा,—“देवी ! मैंने तुम्हारा एक एक शब्द ध्यान से सुना और उस पर विचार किया; और विचार करने पर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मैं गलती कर रहा था। और अब ऐसी गलती नहीं करूँगा। ओह, कितने युगों से मैं भ्रम में पड़ा हुआ था ! अब मैं जान गया हूँ कि न तो मैं अपने गुणों को ही बदल सकता हूँ और न तो मुझमें रस की धार ही फूट सकती है। मेरा जन्म केवल इसलिए हुआ है कि मैं तिल तिल गलता रहूँ और खुद गलकर, घिसकर तुम्हारी रक्षा करता रहूँ।”

धारा ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा,—“तुम कहते हो, तुम मेरी रक्षा करते हो; किन्तु कैसे ? ज़रा मुझे भी तो समझा दो ! मैं तो समझती हूँ कि ईश्वर ही सबकी रक्षा करता है।”

पत्थर ने शांत स्वर में योगी की तरह उत्तर दिया,—

बहार की मौत

बहार का वह दिन अक्सर मेरे विचारों के वृक्ष से लिपटी भावनाओं की नाजुक सी बेल को झकझोर देता है ! अक्सर मेरी करुण कोमल भावनाओं के प्राणों में विचार का काँटा चुभकर एक टीस सी पैदा कर देता है और उनके प्राण स्पंदित हो उठते हैं !

कदाचित् बहार का वह दिन तुम्हें भी अपनी याद की ठंडी अँगुलियों से काँपता हुआ स्पर्श कर जाता हो और कदाचित् तुम भी स्पंदित हो उठते हो ! हाँ, तो क्या तुम्हें याद है वह दिन, जब बहार की मस्ती में डूबी, मदमाती गंध से लदी चमेली की झुकी पड़ती हुई बेल की एक नाजुक सी टहनी पर एक नन्हीं सी नीली चिड़िया अपनी पतली पीली चोंच को खोलकर चहचहाती हुई—अपनी मीठी स्वर-लहरी में अज्ञात किन्तु आकर्षक, अटपटी किन्तु सुरीली तान से कुछ गाती हुई—आ बैठी थी और अपनी सम्पूर्ण भोली चपलता को बहार की मस्ती में भिगोकर बार बार फुदक उठती थी ? कितना कोमल था उस चिड़िया का कण्ठ स्वर ! कितनी मादक थी उसकी आवाज़ ! कितनी चपल और कितनी नन्हीं सी थी उसकी जान ! उस दम में और तुम दोनों ही उसकी आवाज़ पर झूम उठे थे !

किन्तु उसके बाद.... क्या तुम्हें याद है कि उस छोटी,

क्या तुम्हें बहार का वह दिन याद है, जब लघुता की कोमलता, सरसता और सुन्दरता के प्राणों पर बड़प्पन की खूंखार प्यास कठोरता से अत्याचार करने की आज्ञादी प्राप्त करके पागल की तरह भयंकर और पिशाची हँसी में खिलाखिला उठी थी ?

नर और मादा दोनों की लाशें स्वाभिमान के पंख फैलाए हुए थीं, क्योंकि दोनों अपने प्यारे बच्चों की रक्षा के लिये लड़ते लड़ते मरे थे। उनको सफलता नहीं मिली, यह उनका दुर्भाग्य था। अफ़सोस, आज वे बहादुर परिदे दुनिया में नहीं हैं !

*** २

एक बड़े शहर की चौड़ी सड़क पर एक ऊँची अट्टालिका थी। उसमें एक घनाढ्य परिवार निवास करता था। माँ बाप थे, बच्चे थे। भरापूरा घर था। हर काम सब लोग सहयोग-पूर्वक करते। साथ खाते, साथ पीते, साथ सोते, साथ जागते। सबका आपस में खूब स्नेह था।

एक बार, जब आतंक के बादल ज़मीन पर जोरों से बरस रहे थे, कुछ गुंडों ने उस अट्टालिका पर हमला बोल दिया। माँ चिल्ला उठी ! बाप काँप उठा ! बच्चे चीखने लगे और लड़कियाँ रोने लगीं ! उनके रोने पीटने पर गुंडों का हौसला आसमान की ऊँचाई को छूने लगा। सबने उन सबको जी भरकर लूटा और मारा पीटा। बाप के सामने बेटों को पीटा गया और बाप थरथर काँपता देखता रहा। भाइयों के आगे बहनों की इज्जत लूटी गयी और माँ बाप के आगे बहू-बेटियों पर अत्याचार हुए। और सब आँख खोलकर थरथर काँपते रहे और आँख मूँदकर देखते रहे ! सबके सब जैसे बिना मौत के मर गये थे ! सबके हौसले उनकी ज़िन्दगी का लालच चाट गया था।

अफ़सोस, उस परिवार के सदस्य आज भी अपने को जीवित समझकर अपना भाग्य सराहते हैं !

नशे

★ ★ ★ १

एक शराबी । नशे में तुल । डगमगाते पैर और ज़बान पर गालियाँ ।

सूनी सड़क । शाम का समय । और अपने आप में मस्त सा वह बढ़ा चला जा रहा था । जान पड़ता था, उसके चलने के लिये सड़क कम चौड़ी पड़ती है ।

सहसा ही एक मोड़ से भैंसों का एक जत्था तेज़ी से बढ़ता हुआ निकला । भैंसों शराबी की ही ओर बढ़ी आ रही थीं । उनके साथ कोई हाँकनेवाला या उनको सँभालनेवाला नहीं था; मगर सब एक ही दिशा में सारी सड़क घेरकर बढ़ रही थीं—नाचती कूदती, नशे में मग्न थिरकती सी ।

शराबी के नशे की मस्ती को यह कुछ अखर सा गया । वह बीच सड़क पर खड़ा होकर ज़ोर ज़ोर से भैंसों को गालियाँ देने लगा । डाँटने फटकारने लगा । मगर भैंसों बिना कुछ सुने अपनी मस्ती में एक एक करके इसकी बगल से निकलती चली गयीं । शराबी का क्रोध अपनी इस अवज्ञा पर बढ़ता चला गया । दो एक की पीठ पर उसने अपने ढीले हाथों के घूसे भी ताने, मगर उनका भी कोई असर नहीं हुआ । उलटे उसी के हाथों को चोट लगी और वह चिढ़ सा गया । भट्लाहट में

उसकी बक भक और बढ़ गयी और उन भैंसों के अनजान मालिक को वह जान जानकर गालियाँ बकने लगा ।

थोड़ी ही देर बाद उसी मोड़ से एक मोटा ताजा मस्त भैंसा भूमता हुआ सा कुछ तेज़ी से इसकी तरफ़ आता दिखाई दिया । शायद शराबी ने भैंसे को अकेला देखकर उस पर ही अपना रोब ग़ालिब करने की ठान ली । और वह भल्लाहट में भैंसे को संबोधन करके गालियों की बौछार सी करने लगा । उछल कूद करने, हाथ पैर फटकारने लगा । भैंसा अपनी चाल से बढ़ता चला आ रहा था । और जैसे जैसे वह पास आता, शराबी का अभिनय अपने “क्लाइमेक्स” पर पहुँचता जाता । अब वो भैंसे को रास्ता चलने की तमीज़ सिखाने के लिए एक महान व्यावहारिक लेक्चर सुनाने लगा था !

इसके तैवर देखकर भैंसे के जी में जाने क्या आया कि वह सहसा ही उस पर दौड़ पड़ा । देखते ही देखते उसने शराबी को सींगों पर उठा लिया ! शराबी चीखने चिल्लाने लगा ! किन्तु इससे पहले कि उसकी आवाज़ किसी के कानों में पड़े, उस भैंसे ने उसे बीच सड़क पर बुरी तरह पटक दिया । और इससे पहले कि वह होश में आकर कुछ सँभलता, उस भैंसे का भारी पैर उसका पेट फाड़कर रीढ़ की हड्डी को तोड़ता हुआ निकल गया !

देखते ही देखते शराबी के प्राण-पखेरू एक निस्सहाय चीख़ के साथ उड़ गए ।

भैंसा अपनी गति से आगे बढ़ गया ।

★ ★ ★ २

संस्कृत के महान व्याकरणाचार्य पाणिनी तपोवन में अपने आश्रम के सामने विद्यार्थियों को व्याकरण के गूढ़ सिद्धांत

सूर्य सम्राट

प्राची के दरबार में ऊषा देवी ने सूर्यदेव के स्वागत की तैयारियाँ कीं, और गगन-मण्डप को स्वर्ण-कुसुमों से सजा दिया। बड़े बड़े, ऊँचे ऊँचे वृक्ष सुन्दर सुवासित सुमनों की डालियाँ सम्राट के श्रीचरणों पर भेंट चढ़ाने के लिए लेकर अदब से सिर झुकाए और अपने अपने पुष्पों की मधुर मादक सुगंध में झूमते हुए खड़े हो गए। नन्हीं नन्हीं, कोमल-कोमल, हल्की फुल्ली मेघ-बालाएँ ऊषा देवी द्वारा सौंपे गए रंग बिरंगे वस्त्र धारण करके और दिव्य सुनहले कुसुमों की मालाएँ पहनकर दरबार में सम्राट एवं अन्य दरबारियों के मनोरंजनार्थ नृत्य करने के लिए आ उपस्थित हुईं।

भगवान भुवन भास्कर के आगे आगे चलकर उनके आगमन की सूचना देने वाली प्रथम किरण ने दरबारियों को सूचित कर दिया। समस्त दरबारी सम्राट के अभिवादन में सिर झुकाकर खड़े हो गए। पृथ्वी पर वसेरा करके आकाश में उड़ानें भरने वाले पक्षियों ने प्राची के दरबार की ओर उड़कर अपने मधुर स्वागत-गान से दिशाओं को गुंजायमान कर दिया।

एक निश्चित सम्राटोचित गति से सम्राट दरबार में पधारे। समस्त दिशाएँ जय-जयकार की ध्वनियों से गूँज गईं। पक्षियों ने मधुर कलरव से जयघोष किया। समस्त भूमण्डल जयघोषों

दरबार भंग होने को आया। ऊषा ससम्मान बिदा हुई। वह जानती थी कि देव अपने विशाल कर्तव्य का कार्यक्रम निश्चित कर रहे हैं।

वृक्षों ने पवन-करों से सुवासित सुमन उनके चरणों पर लुटा दिए। सम्राट ने, ससम्मान भेंट किए गए उन कोमल सुमनों को उचित रूप में स्वीकार करते हुए उन्हें पृथ्वी पर बिखेर दिया। ताकि उनके कर्तव्य-पथ पर पड़कर वे झुलस न जायँ— उनके चरणों पर चढ़े सुमन उन्हीं के द्वारा कुचल न दिए जायँ। पृथ्वी ने उन्हें सम्राट का प्रसाद मानकर ग्रहण कर लिया।

....छोटे से लेकर बड़े तक दरबार में किसी की अवहेलना या अपमान नहीं हुआ। सब संतुष्ट थे, प्रसन्न थे।

सम्राट को उनका कर्तव्य पुकार रहा था। वे उसकी ओर बढ़ रहे थे।....उनके चरण विशाल कर्तव्य की ओर निश्चित दृढ़ता से उठ रहे थे।

मनुष्य और पत्थर

संगमर्मर के पत्थरों का एक पहाड़ था। प्रकृति के शिल्पकार ने पत्थरों की चट्टानों को एक दूसरे पर रचकर उसे ऐसा रूप दे दिया था कि देखते ही बनता था। जब चाँदनी रातें होतीं और चाँद घड़ों दूध पृथ्वी पर उँड़ेलता, तब संगमर्मर की शिलाएँ इस तरह दमकतीं मानों ताजे मक्खन का बड़ा भारी ढेर रखा हो। उसके आसपास एक बहुत बड़ा जंगल था, जहाँ सदा शान्ति का साम्राज्य छाया रहता। मनुष्यों की चहल-पहल से वह बहुत दूर था। कई युगों तक दुनियावालों को उसका पता न लगा। लेकिन दुनिया के मनुष्य नामक प्राणी की नज़रों से वह छिप नहीं सका। कुछ भूतत्ववेत्ताओं ने दूर से ही देख कर कह दिया कि उसके सीने में ऐसे-ऐसे अनमोल पत्थर भरे पड़े हैं, जिनकी सहायता से मनुष्य जाति अपनी सुन्दर दुनिया का निर्माण बड़ी खूबी के साथ कर सकती है।

बस, अनमोल पत्थरों को प्राप्त करने की इच्छा मनुष्य जाति अधिक दिनों तक नहीं दबा सकी और एक दिन पहाड़ के सीने पर खुदाई शुरू हो गई। पहिले सीना कुरेदा गया। चट्टानों पर जमी हुई मिट्टी और काई की चादर हटाई गई और फिर जगह-जगह छोटे-छोटे ज़रूम बनाये गये। पहाड़ चुपचाप सब देखता था, और दिल मसोस कर रह जाता था। उसके पास न तो कहने के लिये ज़बान थी,

न सहने के लिये दिल । फिर भी बेचारा चुपचाप सह रहा था ।

एक दिन पहाड़ सोचने लगा मनुष्य जाति इस तरह मुझे कष्ट देकर, परेशान करके, अपना क्या लाभ करती है? मेरे हृदय के टुकड़े, ये पत्थर, उनके किस काम आते हैं? क्या वह इनसे अपना उदर-पोषण करती है? क्या वह इनसे अपने मार्ग पाटती है? आखिर क्या करती है?’—लेकिन पर्वत ठीक ठीक कुछ भी न सोच सका । उसने कभी भी मनुष्यों के नगर नहीं देखे थे । देख भी तो नहीं सकता था । यह बात जानने की उसकी इच्छा बहुत तीव्र हो उठी । लेकिन वह विवश था । कुछ भी न जान सका ।

धीरे धीरे दिन बीते । मौसम बदले । ऋतुएँ बदलीं और सैकड़ों वर्ष बीत गए । तब एक बार फिर मनुष्यों का एक जत्था पहाड़ का सीना कुरेदने के लिए आ पहुँचा । पहाड़ थर्रा गया, लेकिन वह कुछ कह न सका । बेचारा मजबूर था । काम शुरू हो गया । हथौड़ों, छेनियों और अन्य औजारों की आवाजें गूँजने लगीं । उस समय पहाड़ तड़प सा उठा । वह जानने के लिए व्याकुल हो उठा, कि यह मनुष्य जाति उसे इस तरह क्यों परेशान करती है? और एक हथौड़े से मित्रता गाँठ कर उसने कारण पूछा । हथौड़े ने हँस कर उसकी छाती पर वार करते हुए अपने भयानक ‘ठप-ठप’ के शब्दों में उत्तर दिया—“पर्वतराज, मैं नहीं जानता था कि आप यह भी नहीं जानते कि मनुष्यों की दुनिया में जाकर आपके हृदय के टुकड़े आपके पुत्र कितनी सुन्दर सृष्टि कर रहे हैं! मैं तो कहूँगा कि

मनुष्य जाति ने आपको धन्य कर दिया, अमर कर दिया। आपकी कीर्ति आपके पत्थरों से बनी हुई विशाल इमारतों, सुन्दर मूर्तियों और पवित्र देवालयों के रूप में अखण्ड रहेगा !”

पर्वतराज ने सहमते हुए कह दिया,—“लेकिन मुझे कष्ट भी तो बहुत दिया है मनुष्य जाति ने !”

“तब मैं कहूँगा गिरीश्वर, कि आप को यह न भूलना चाहिए कि प्रत्येक कष्ट के बाद सुख और शान्ति की सृष्टि होती है। आप का सीना चीरा गया—आप को कष्ट हुआ; किन्तु उस कष्ट के बदले आपको वह कीर्ति मिली है जो सदा अखंड, सदा अमर रहेगी। आप सुनेंगे कि आपकी गोद में पड़े हुए वे विशाल विकृत पत्थर आज मनुष्यों की दुनिया में अनमोल गिने जाते हैं, उनसे सुन्दर-सुन्दर, कोमल-कठोर, ऐसी वस्तुएँ बनाई जाती हैं, जिनसे उन निरर्थक पत्थरों का निरर्थक जीवन सार्थक हो गया है, तो आपको अवश्य सुख और शान्ति लाभ होगा। मैं समझता हूँ, आप अपने को अवश्य धन्य समझेंगे !”

“यह मेरे लिये गौरव की बात है महाशय, किन्तु दुःख केवल इतना है कि वे मुझसे दूर हैं। मैं उन्हें अपने सीने से अलग नहीं करना चाहता था।”

“किन्तु गिरिराज, यदि आप फिर से उन्हें अपनी ममता में समेटना चाहेंगे तो उनका जीवन नष्ट हो जायगा, वे और आप अपने को कदापि धन्य न बना सकेंगे....और जिनका जीवन किसी काम नहीं आता वे पृथ्वी का भार होते हैं ! शायद आप जानते हों, संसार में त्याग ही सब को धन्य बनाता है !”

“मैं नहीं जानता था, पर अब जान गया हूँ। इसीलिए अब और कुछ नहीं कहूँगा ! किन्तु मैं एक संदेश अपने पुत्रों को भेजना चाहता हूँ ! क्या आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करके मेरा संदेश उन तक पहुँचाने की कृपा करेंगे ?”

“अवश्य गिरीश्वर, मैं आप ऐसे महान त्यागी का दूत बनकर अपने जीवन को धन्य बनाने की लालसा नहीं त्याग सकता ! मैं सेवा के लिये तैयार हूँ।”

“लेकिन मैं आप से सेवा नहीं कराना चाहता महाशय ! मैं चाहता हूँ कि आप मुझ पर कृपा करें।”

हथौड़े ने मुस्कराकर धीरे से उत्तर दिया—“जो अपनी लालसा को त्याग नहीं सकता, वह किसी पर कृपा क्या करेगा गिरिराज ?”

हथौड़े की विवेकपूर्ण अटपटी सी बात सुनकर पर्वत भी मुस्करा उठा।

फिर सहसा ही हथौड़ा कह उठा,—“हाँ कहिये गिरिराज, क्या संदेश है ? शायद मुझे शीघ्र ही लौटकर नगरों की ओर जाना पड़ेगा और संभवतः मैं आपके पुत्रोंसे भी मिलूँगा। मेरी सहायता के बगैर मनुष्य उनको कोई भी सुन्दर रूप नहीं प्रदान कर सकते। मैं उनके कानों में आपका सन्देश कह दूँगा।”

“मुझे अपने बच्चों से केवल इतना कहना है कि वे ईश्वर से प्रार्थना करें कि मुझे और उन्हें, वह एक दूसरे का वियोग सहन करने की शक्ति दे। और वे जहाँ, जिस तरह, जिस रूप में हैं, वैसे ही रहें तथा मनुष्य उनका जिस तरह उपयोग करना चाहें उन्हें करने दें। उन्हें आप समझा दीजियेगा कि इसी में

उनके जीवन की सार्थकता है, सफलता है। त्याग ही जीवन को धन्य बनाता है ! ”

फिर कुछ समय बाद पर्वत से पत्थरों के नाम संदेश लेकर वह हथौड़ा अपने साथियों के साथ नगर की ओर लौट गया।

* * *

नगर में आकर हथौड़े ने संगमर्मर के पत्थरों से ठुक-ठुक ठिक-ठिक के स्वरों में उनके पिता का संदेश कह सुनाया और अपने पिता का वह संदेश, वह आज्ञा, उन आज्ञाकारी पुत्रों ने अपने दिलों के पदों पर उतार ली, बिलकुल जैसी की तैसी।

* * *

इस बात को कई युग बीत गए। पत्थर अपने वचन का बराबर पालन करते आ रहे थे और उधर पर्वत चुपचाप अपने हृदय के ठुकड़ों की भेंट मनुष्यों को चढ़ा रहा था। मनुष्य तो लूटने वाले प्राणी हैं। वे उसे लूटते रहे और पर्वत चुपचाप उनके भले की बात सोच कर लुटता रहा।

एक दिन की बात है कि उस पर्वत के पत्थरों के दो ढेर एक दूसरे से कुछ फासले पर पड़े हुए थे। एक ढेर के पत्थरों से एक मस्जिद बनने वाली थी और दूसरे ढेर के पत्थरों से एक मन्दिर ! मनुष्यों के दो दिलों में उन दो इमारतों से सम्बन्ध रखने वाली किसी बात पर झगड़ा हो गया !

फिर दोनों दिलों के मनुष्यों ने दोनों ढेरों पर के पत्थरों को उठा उठाकर एक दूसरे पर फेंकना शुरू किया। कुछ पत्थर आपस में टकरा गए, कुछ टूट गए और कुछ ने कई मनुष्यों के सर फोड़ दिये। उस समय पत्थर अपने अस्तित्व पर पश्चात्ताप

करने लगे। क्या मनुष्य इसीलिये इतनी मेहनत से, इतनी दूर से, ढोकर उन्हें लाया था ? उन्हें मनुष्यों से तीव्र घृणा हो रही थी। पर वे अपने पिता की आज्ञा में बँधे हुए थे, इसलिये मनुष्यों द्वारा अपने इस मूर्खतापूर्ण उपयोग को भी वे चुपचाप देखते रहे।

थोड़ी देर बाद....

अधूरी मस्जिद और अपूर्ण मंदिर दोनों एक दूसरे को ताक रहे थे। अनेकों लाशें दोनों के बीच पड़ी हुई तड़प रही थीं और वे पत्थरों के विशाल ढेर तहस-नहस होकर बिखरे पड़े थे।

एक पत्थर ने पूछा,—“यह कैसा भगड़ा था ?”

मंदिर और मस्जिद से आवाज़ आयी,—“यह धार्मिक युद्ध था !”

तब आपस में एक दूसरे से टकराकर टूटे हुए पत्थरों ने एक दूसरे की ओर सहानुभूति से देखकर सोचा,—‘यह कैसा धर्म है ? क्या आपस में टकराकर हमने भी किसी धर्म का पालन किया है ?’

*

*

*

उस दिन के बाद जब भी मनुष्यों का चर्चा छिड़ता है, पत्थर खिसियाकर कह उठते हैं,—“मनुष्य जितना समझदार समझा जाता है, वह उतना ही मूर्ख भी है !”

भेद-भाव की भावना से दूर, बहुत-दूर रह कर सबके निमन्त्रण समान रूप से स्वीकृत करती हूँ। क्या राजा, क्या रंक, क्या धनी, क्या निर्धन, क्या छूत, क्या अछूत, क्या जड़, क्या चेतन, सभी प्राणी-मात्र, सभी जीव-मात्र मेरी दृष्टि में बराबर रहे हैं और सदा रहेंगे। सृष्टि के आदि से अन्त तक मैं अविराम गति से अपना कार्य करती रहूँगी। न मैं कभी तृप्त हुई, न अतृप्त रही। न मैं कभी भूखी रही, न कभी मेरा पेट भरा। सृष्टि के आदि काल में मेरा पेट जितना खाली था, उतना ही अब भी खाली है और जिस दिन सृष्टि का अन्त होगा, उस दिन भी मेरा पेट उतना ही खाली होगा। लेकिन मैं पहिले ही कह चुकी हूँ कि न मैं कभी भूखी रही हूँ, न रहूँगी। शायद यह बात तुम्हें आश्चर्य में डाल दे; किन्तु वह सत्य है।”

मौत ने अपने मुँह अपनी कहानी कह डाली—अच्छा खासा व्याख्यान दे डाला। अस्थि-कंकाल चुपचाप मौत का मुँह ताकता हुआ सब कुछ सुन गया। उसकी कमर टूटी जा रही थी, पाँव डगमगा रहे थे और धड़ पर सिर तक का बोझ असह्य हुआ जा रहा था—लेकिन यह लम्बा-चौड़ा लेक्चर उसे सुनना पड़ा, वह सुन गया।

थोड़ी देर तक वे दोनों एक-दूसरे का मुँह ताकते रहे। फिर अस्थि-कंकाल ने मौत भंग करते हुए विनय भरे स्वर में कहा,—“तो फिर चलिए न मेरे साथ ही!”

“तो क्या अभी ही चलना पड़ेगा? खैर, कोई बात नहीं। चलो! लेकिन कुछ सवारी वगैरह का प्रबन्ध तुमने किया है या नहीं?”

“क्यों नहीं? मैं अपने सिर आँखों पर बिठाकर आपको ले चलूँगा!”

“धन्यवाद !”

और थोड़ी ही देर बाद उस अस्थि-कंकाल के सिर पर चढ़ मौत चल खड़ी हुई। मौत ने जब उस बस्ती में पदार्पण किया तो वहाँ सारी परिस्थितियाँ अनुकूल थीं। सभी उसका स्वागत करने को तैयार थे।

सौन्दर्य उस बस्ती से डरकर दूर भाग गया था। नहीं नहीं, भाग नहीं गया था; वरन्, उन सूखी हड्डियों से लिपटे मांस के चिथड़ों में दफ़ना दिया गया था। उन कंकालों के सूखे पिचके चेहरे सौन्दर्य की अगणित कन्नें बन गए थे।

मौत से पहले वहां मौत की छाया पहुँच चुकी थी।

महलों का अभिमान न जाने कहाँ लोप हो गया था और भोपड़ियों की तो बात ही न पूछिए। वे भी आज महलों की बराबरी का दावा खुले आम कर सकती थीं। महल और भोपड़े दोनों ही अधिकतर वीरान थे। फिर भी अनेकों अस्थिपंजर, खाली पेट और टिमटिम आँखें मौत के स्वागत के लिए तैयार थीं। मौत की छाया अच्छी तरह सब तरफ अपना सिक्का जमा चुकी थी। कहीं टूटी हुई खाटों पर रूठे हुए नसीब लिए टूटे हुए दिल सूखे हुए शरीरों में अटके हुए प्राणों को टूटती हुई साँसों में लटकाये हुए पड़े थे। कहीं तपते हुए सूरज की छाया में, रास्ते पर, भोपड़ियों के सामने मौत के स्वागतार्थ मौत के चरण ज़मीन पर न पड़ने देने के लिए—अपने आपको बिछाए मौत की प्रतीक्षा करते बेसुध से लेटे हुए थे। कहीं चाटचाट

कर साफ किये हुए हाँडियों के टुकड़े टूटे हुए भोपड़ों में, सड़कों पर और सूखे हुए मैदानों में पड़े थे; मानों प्राणियों के प्राणों को उन्हीं कटोरों में रखकर मौत चबाएगी। कहीं मौत की गोद में सोए हुए ढोरों की सूखी हुई हड्डियों को दुबले पतले और कमजोर कुत्ते अपने कमजोर जबड़ों से चिंचोड़ रहे थे। कहीं चीलें, गिद्ध इत्यादि मांसभक्षी परिंदे खुले हुए पंजों से मरे हुए कुत्तों तथा अन्य ढोरों पर आक्रमण कर रहे थे। कहीं कहीं तो कुछ गिद्ध जिन्दा कुत्तों पर भी वार कर रहे थे। न कहीं अन्न दिखता था, न जल। सब तरफ सन्नाटा था। मौत ने मुस्कराकर हाथ फैलाये। सैकड़ों ही प्राणियों ने अपने आप को मौत के हवाले कर दिया। मौत इस तरह अपना स्वागत होते-देख नाच उठी !

बहुत दिनों तक मौत उस बस्ती में मौज करती रही। न कोई रोकने वाला मिला, न टोकने वाला। वह बेखटके जिस पर चाहे हाथ साफ़ करती और खिलखिला पड़ती। प्राणों को चबाकर सूखी हुई हड्डियों और रस रक्तहीन मांस के लोथड़े फेंकती जाती। वे जहाँ गिर पड़ते, वहीं पड़े रहते। न कोई उस कचरे को साफ़ करने वाला था, न नष्ट करने वाला।

जहाँ तहाँ लाशें पड़ी हुई थीं। सब ने मौत का जोरदार स्वागत किया था। इसी दौरान में एक दो कंकालों ने कहा था, —“हे सर्वनाशिनी ! केवल प्राणों को ग्रहण करके आप अस्थि, मांस, रक्तादि क्यों छोड़ देती हैं ? इन्हें भी ले लीजिए न !”

तब मौत ने बड़े ही कर्कश स्वर में उत्तर दिया था—
“नहीं, प्राणों के सिवा मैं और किसी पदार्थ का उपयोग नहीं

रँगरेज़

....स्मृति के किनारे विस्मृति की गर्त में समायी, कुछ धुँधली धुँधली रेखाएँ उभर रही हैं !

....एक विशाल नीले कढ़ाव में अनोखे रंग घोलकर एक रँगरेज़ रंग-बिरंगे कपड़े रँगा करता है ! किन्तु अनोखी बात यह है कि अनेकों रंगों में हाथ डुबाए होने पर भी उसके हाथों पर कोई रंग नहीं चढ़ता ! हाँ, उसके हाथों के कपड़े ज़रूर रँग जाते हैं ! वह रँग देता है सबको, लेकिन उसे कोई रंग नहीं छू पाता ! रंग उसमें लिप्त हैं पर वह रंगों से अलिप्त है ! है न अनोखी बात ?

....उसके अनेक बेटे और बेटियाँ हैं ! मैं भी उन्हीं में से एक हूँ । वह हमारा, हम सबका, पिता है, यह तो हम जानते हैं, मगर यह नहीं जान पाये कि उसका पिता कौन था—हमारा पितामह कौन है ? और अगर तुम्हें बात अटपटी न लगे, तो हमें तो शंका है कि पता नहीं उसका कोई पिता भी था या नहीं ?

सचमुच, बात कुछ ऐसी ही है । हममें से अनेक ने, और खास तौर पर मैंने, कई बार उससे अपने पितामह के बारे में पूछताछ करने की भी कोशिश की; मगर हरबार उसने हमें टाल दिया और कह दिया,—“जाओ, अपना अपना काम देखो !”

उसके सामने अधिक बोलने की किसी की हिम्मत नहीं ।

पता नहीं, वह कभी सोता भी है, अथवा नहीं; क्योंकि जब हम सोने लगते हैं, तब भी वह जागता रहता है और जब हम जागते हैं, तब भी उसकी आँखें खुली रहती हैं—वह अपने कामों में लगा ही रहता है !

उसकी कार्य प्रणाली भी बड़ी अनोखी है ! जब उसे कढ़ाव गर्म करना होता है, तो धीरे धीरे फूँककर उसमें जले हुए सारे चिराग़ बुझा देता है और फिर कढ़ाव के एक कोने में रखे अधबुझे से अग्निपिंड को फूँक फूँककर दहका लेता है। तदनन्तर उसे कढ़ाव के एक कोने से दूसरे कोने की ओर ले जाता हुआ कार्यारम्भ कर देता है ! वह अग्निपिंड कढ़ाव को इतना गर्म कर देता है कि अनेक रंगों में उफान आकर कढ़ाव की सतह पर लहराने लगता है ! प्रायः अग्निपिंड हटा लेने पर भी वह उफान जैसा का तैसा बना रहता है। मैंने कई बार उसकी ओर संकेत करके पूछा था, कि उसे वह नष्ट क्यों नहीं कर देता ? वह तो उसके कार्य में रुकावट डालता है !

तब उसने गंभीर हँसी हँसकर मुझे मूर्ख ठहराते हुए कहा था, कि उस तूफान से न तो उसे कोई नुकसान पहुँचा है और न तो रंगे जानेवाले कपड़ों को ही कोई हानि होती है। बल्कि उसके द्वारा तो एक विचित्र रूप में उन कपड़ों का संरक्षण ही होता है ! यदि उफान न रहे तो अग्निपिंड का ताप सारे वस्त्रों को भस्मसात कर डाले ! और उसका काम बीच ही में रुक जाय ! वह तो कपड़ों को रँगना चाहता है, जलाना नहीं !

उस उफान के विषय में उसने एक बात और कही थी कि जब वस्त्रों के संरक्षण में वह खुद ही किसी वस्त्र खंड से

टकराकर नष्ट हो जायगा, तब अकारण ही उसे नष्ट करने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा करना तो मूर्खता से बढ़कर और कुछ नहीं होगा । और सचमुच यदि वह अपना काम मुझे सौंप देता तो ताज्जुब नहीं, मैं जाने या अनजाने वैसा ही कर बैठता ! और तब उसका परिणाम कितना घातक, कितना भयानक होता ! कढ़ाव का सारा रंग सूख जाता ! सब कपड़ों में आग लग जाती ! सब कुछ भस्मसात् हो जाता !....इस अनोखे रंगरेज़ का यह प्यारा प्यारा खेल ख़त्म हो जाता !

*

*

*

हम लोग सदा आश्चर्य और आनन्द के साथ अपने पिता के उस अद्भुत तमाशे को देखा करते । देखते और सोचते, सोचते और देखते ! बार बार प्रश्न उठता,—‘यह सब क्यों हो रहा है ?’ और उत्तर बिहीन होकर दब जाता । कुछ भी निश्चित करना हमारी समझ के बाहर की बात जान पड़ती ।

एक बार मैंने पिता से पूछने की हिम्मत कर ही ली,—
“आखिर यह सब क्यों रचा गया है ? इन सबका प्रयोजन क्या है ?”

उनकी स्थिर दृष्टि गंभीरता से थोड़ी देर तक मेरी तरफ़ ताकती रही । मैं कुछ सहम सा गया । किन्तु दूसरे ही क्षण घनी मूछों और दिव्य, श्वेत दाढ़ी की ओट में मुस्कुराहट की स्पष्ट रेखा भाँक उठी,—“केवल आनन्द के लिये, केवल मनोरंजन के लिये !”

कैसा विचित्र आनंद ! कैसा अनोखा मनोरंजन ! मैं स्तंभित सा रह गया । कढ़ाव में एक हरा हरा, पीला पीला

चमचमाता हुआ अत्यन्त सुन्दर वस्त्र मेरी दृष्टि से उलभ गया। मैं उसकी सुन्दरता में इस तरह रँग गया, इतना तल्लीन हो गया कि दृष्टि न हटा सका—न हटा सका ! मैं यह भी भूल गया कि पिताजी कितनी गंभीरता से मेरी मृदा को देख रहे हैं ! जब मुझे होश सा आया तो वे फिर मुस्कुरा उठे। मेरे जी में आया कि पिताजी से कहूँ कि यदि कोई हर्ज न हो तो मैं उस सुन्दर वस्त्र को अपना लूँ ! अपने पुत्र को इतनी सुन्दर वस्तु अपनाते हुए देखकर वे नाराज़ भी नहीं हो सकते; वे तो खुश ही होंगे !

न जाने कैसे उन्होंने मेरे दिल की बात ताड़ ली। वे बोले,—“क्या तुम उसे अपनाना चाहते हो ?” पिताजी ने ही जब ऐसा कहा तो मैंने हृदय के सारे संकोच को एक ओर हटाकर और अपने भोले भाले लड़कपन को पूरी तरह समेटकर कहा,—“हाँ पिताजी !”

मेरा इतना कहना था कि सब तरफ़ अंधकार छा गया ! सब तरफ़ एक अनोखा सन्नाटा घिर आया ! मैं भौंचक्का सा रह गया और मेरी आँखें आपसे आप मुँद गई ! फिर जब मेरी आँखें खुलीं तो देखा, चारों ओर दिव्य प्रकाश फैल रहा है ! शान्ति है ! ऊपर से आनंद बरस रहा है और मैं एक नन्हें से वस्त्र खंड पर अस्त व्यस्त सा पड़ा हूँ। मेरी देह इतनी छोटी हो गई थी कि वही वस्त्र खंड जो मुझे कढ़ाव में बहुत छोटा दिखाई पड़ता था, अब मेरी दृष्टि की सीमा से भी कई गुना बड़ा लगने लगा था।

मैंने अपने चारों ओर नजर घुमाई और जिस जिस पदार्थ

पर मेरी नज़र पड़ी, मुझे लगा जैसे उस उस पदार्थ में मेरे प्राणों का प्रकाश समाता जा रहा है—मैं पल पल पर क्षीण होता जा रहा हूँ। मेरी शक्ति सब में समाने लगी और मैं दुर्बल होता गया। हाय ! मैं दुर्बल होता गया। मैं चीखा, चिल्लाया ! पिताजी, मैं यहाँ नहीं रहना चाहता—नहीं रह सकता।....तब घिरी हुई बदलियों की ओट से पिताजी मुस्कुरा पड़े। बिजलियों के शब्दों में उन्होंने मुझे समझाया,—“ठहरो ! घबराओ नहीं ! थोड़ी ही देर में आनंद बरसेगा ! शक्ति मिल जायेगी !”

....ऊँचे पर्वत के शिखर पर जमी हुई बर्फ पिघलकर मेरी ओर बढ़ी ! मैं फिर डर गया और भागकर पास के एक सूखे टीलेपर चढ़ गया। हरहराती हुई तूफानी गति से वह बर्फ उतार की ओर बह गई और थोड़ी देर बाद उसकी गति शांत हो गई।

....फिर एकाएक ही जोर की आँधी चलने लगी। उफ़ ! भयंकर आँधी चलने लगी। अब आनंद क्या खाक बरसेगा ? बदली छँट जायगी। मैं टीले पर नहीं ठहर सका। नीचे उतर आया। उस बर्फीली नदी के किनारे चट्टानों की एक खोह में छिप रहा।....आँधी शांत हुई। बाहर निकला। आसपास के पदार्थ फिर मेरी शक्ति छीनने लगे। मैं फिर चीखा ! काले बादल फिर घिर आए !....उनसे उतर कर उदासी मेरे मानस में समा गई ! हाय, मैं दुर्बल हो गया !

क्षणभर बाद ही आनंद बरसने लगा। लेकिन मेरा दुखी हृदय आनंद से अलिप्त ही रहा। बिजलियाँ चमकीं। मेरे ज्ञान के अँधेरे मार्ग पर प्रकाश फैला। किन्तु मैं बढ़ा नहीं। रुका रहा। पर्वत के शिखर का बर्फ पिघल कर गतिमान हो गया।

और बहुत आगे बढ़ गया पर मेरे पावों में विवशता की बेड़ियाँ पड़ी थीं। मैं न बढ़ सका। आह! मैं बहुत दुर्बल हो गया था!

....मेरे हृदय की सम्पूर्ण कठुना, पीड़ा और सारा रस मेरे निःश्वासों में समाकर आसमान पर छाने लगा। मैं अस्त व्यस्त भूमि पर पड़ा था। ओह! मैं कितना दुर्बल हो गया था!

धीरे धीरे सारी बातें, जो जो दृष्टि से परे थीं, लोप होने लगीं—विस्मृति की गोद में खोने लगीं! मैं बेचैन सा हो उठा। मैं सारी बातें भूलता जा रहा था और उनको याद करने के प्रयत्न में बेचैनियाँ हृदय में घुसती जा रही थीं। ओह! मैं इतना क्षीण हो गया था कि दृष्टि के परे की बातें—याद तक नहीं रख सका। हाय रे! मैं इतना क्षीण हो गया था कि बीती बातों की याद का भार भी मस्तिष्क पर नहीं सँभाल सका।

मैं भूल गया, भूल गया, सब कुछ भूल गया! ओह, मैं यह भी भूल गया कि मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? मेरे आसपास जो चीजें हैं, वे क्या हैं? ...मेरा पिता कौन है? मैं सब कुछ भूल गया!

....सहसा कठुना में डूबे हुए नीले आकाश में किसीने मेरी उच्छ्वासों को एकत्र करके साकार कर दिया। मेरे हृदय की पीड़ा, कठुना, कोमलता, सरसता, सौंदर्य सबकी एक प्रतिमा सी किसी ने बना दी!.....मैं भूल गया था, अपने पिता उस रँगरेज को, जिसने इसी तरह की अनेकों अनोखी चीजें हमारी आँखों के आगे ही बनाई थीं। इसीलिए तो विस्मय से सोचने

समझने का प्रयत्न करता हुआ, मैं उस प्रतिमा को देखने लगा । लेकिन अफ़सोस, न समझ सका कि वह कौन है, जो यह सब खेल कर रहा है ? अफ़सोस, मेरी याददास्त मौत के घाट उतर चुकी थी !

.....मैंने देखा वह प्रतिमा नीचे उतर रही है ! उसके आँचल से आनंद बरस रहा है । आँखों से करुणा और सहृदयता का स्रोत फूटा पड़ रहा है । रोम रोम से दिव्य ज्योति और हृदय से स्नेह की धारा बह रही है । मैं न जाने क्यों प्रफुल्लित हो उठा ।

.....मानो नीले आकाश के स्वामी ने मुझे कोई वरदान दिया हो । मैं आनंद से नाच उठा ! सचमुच, वह एक पवित्र, दिव्य और स्नेह से सिक्त एक वरदान ही था—नारी !

.....हाँ, नारी !

उसने मुझे अपनाया, मैं धन्य हो गया । मैंने उसे अपनाया, वह और दिव्य हो उठी !

.....सुबह के आकाश पर किसी ने रंगों का एक सागर सा उड़ेल दिया, मैं देखता रहा ।

दोपहर हुई । किसी ने सारे रंग पोंछकर विशाल आकाश की नीलिमा में डुबो दिए । आग का एक दिव्य गोला आसमान की छाती पर जड़ दिया । मैं देखता रहा ।

शाम हुई । फिर रंगों का खेल हुआ—मनोहर, दिव्य, अद्भुत ! मैं देखता रहा !

फिर किसी ने इन सारे दृश्यों पर अंधकार का एक महा-सागर सा उड़ेल दिया । सब कुछ अँधेरे में खो गया । मैं

देखता—समझने का प्रयत्न करता रहा; लेकिन कुछ समझ में न आया। बहुत ध्यान लगाया, बहुत सोचा। किन्तु सब व्यर्थ। न समझ सका कि यह सब किस रंगरेज के खेल हैं? हाय, न समझ सका !

.....फिर शीतल प्रकाश की किरणें बिखेरता हुआ चंद्रमा किसी के इंगित पर आगे बढ़ आया। मैं उस जगमगाते हुए बर्फीले पर्वत के किनारे एक छोटे से टीले पर बैठा बैठा उसे देखता रहा। कुछ समझने के लिये सोचता भी रहा। लेकिन कुछ भी न समझ सका। मैं बेचैन हो उठा।

उफ़, बहुत बेचैन हो उठा !

.....फिर अपनी बेचैनियों को भूलने के लिये, भूली हुई बातों की याद को भूलने के लिये, नारी की माया के आनंद में खो जाने के लिये, मैं एक थके हुए भ्रांत पथिक के समान, नारी की स्नेहमयी गोद में सिर रखकर सो गया।

.....मैं स्नेह के महासमुद्र में डूब गया ! मुझे कुछ याद न रहा। सब कुछ भूल गया।

.....लेकिन आज स्मृति के किनारे विस्मृति के गर्त में समाई कुछ धुँधली रेखाएँ उभर रही हैं !

.....नीले कढ़ाव में रंगरेज के खेल एक एक करके धुँधले धुँधले आकारों में आँख मिचौली खेलते से नज़र आने लगे हैं !

कहानी और लघुकथा

- [निबन्ध]

आदि कथा

यद्यपि अंग्रेजी के आलोचक रिचार्ड वर्टन मानते हैं कि—“कहानी संसार की सर्वाधिक प्राचीन वस्तु है, इसलिये आश्चर्य नहीं कि इसका आरम्भ तभी हुआ हो जब मानव सभ्यता ने घुटनों के बल चलना सीखा था !” और इस प्रकार कहानी की परम्परा कोई दस बारह हजार बरस पुरानी मानी जा सकती है; तथापि संसार के लिखित साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन भारतीय वैदिक साहित्य माना जाता है और उसमें अनेक स्थलों पर कहानी अपने बीज रूप में विद्यमान है । प्रकृति के विभिन्न व्यापारों को प्रतीकात्मक शैली में हमारे वैदिक साहित्य में चित्रित ही नहीं किया गया, वरन् उन पर अनेक रूपक भी मानवीय कल्पना और प्राकृतिक सत्तों के मेल से रचे गये । कहीं सूर्य देवताओं का राजा “इन्द्र” बनकर “वृत्र” नामक अहि सर्पों के से आकार वाले मेघों का संहार करके सृष्टि को जल प्रदान करता है, तो कहीं ऊषा को अनेक प्रेमोपहार समर्पित करता हुआ और कहीं “वृत्र” के वंदीगृह से मुक्त कराता हुआ दृष्टिगोचर होता है ! ब्रह्मा और सरस्वती, पुरूरवा और उर्वशी, योतम और अहिल्या आदि की पौराणिक गाथाएँ सूत्र रूप से वैदिक साहित्य की ही देन हैं । अस्तु ।

प्राकृतिक शक्तियों के विभिन्न व्यापारों को प्राचीन आर्यों की जिज्ञासा ने अपने कौतूहल को शांत करने के लिये कल्पना का सहारा लेकर पहले पहल (ऋग्वेद में) उस प्रतीकात्मक साहित्य की गर्जना की जो आगे चलकर “पौराणिक धर्मगाथाओं” का बीज बनी। इक्ष्वाकु,

पुरूरवा, अत्रि, आयु, नहुष, ययाति, यदु, पुरु, द्रह्यु, मनु, शान्तनु आदि अनेक नाम वेदों में ऐसे भी आते हैं, जिन्हें देखकर अनेक विद्वान् उनमें इतिहास को भी निहित मानते हैं। काल्पनिक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार के सत्त्वों पर “कथा” की नींव वैदिक साहित्य में उपलब्ध मानी जा सकती है।

स्वरूप संगठन

यद्यपि विद्वानों ने “लघुकथा” को ललित साहित्य में “कथा” से अलग कोई स्वतंत्र स्थान नहीं दिया है, तथापि शैली आदि की दृष्टि से “लघुकथा” अपनी अलग विशेषताएँ रखती है। वैसे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुकूल आर्य विद्वानों ने सदैव प्रवहमान, सदैव प्रगतिशील, और सदैव विकासशील “साहित्य” को भी परिभाषाओं तथा व्याख्याओं की सीमा में जकड़ने से नहीं छोड़ा था।

अग्निपुराण, दण्डी ऋषि कृत ‘काव्यादर्श’, विश्वनाथ कविराज कृत ‘साहित्य दर्पण’, वामन कृत ‘अलंकार सूत्र’, आनन्दवर्धन कृत ‘ध्वन्यालोक’ आदि संस्कृत के अनेकों रीति-ग्रन्थों में उपलब्ध व्याख्याओं और परिभाषाओं के अनुसार “कथा” को निम्नलिखित स्वरूपों में विभाजित किया गया था—(१) आख्यायिका, (२) आख्यान, (३) आख्यानक, (४) कथा, (५) कथानिका या कथालिका, (६) सकल कथा (७) परिकथा, (८) खण्डकथा और (९) चित्रकथा। यद्यपि इन शब्दों में से अनेक शब्द एक ही अर्थ में क्यों न प्रयुक्त किए जाते रहे हों, तथापि इनसे यह अवश्य पता चल जाता है कि “कहानी” अथवा “कथा” अपने विभिन्न स्वरूपों में हमारे यहाँ विद्यमान ही नहीं थी, अपितु उसकी विभिन्नताओं को शास्त्रीय परिभाषाओं का रूप भी प्राप्त हो चुका था। और विभिन्न कालों में प्रचलित इन विभिन्न नामों और भेदों उपभेदों को कालान्तर में दण्डी ने केवल दो भेदों के रूप में ही स्वीकार किया—(१) आख्यायिका और (२) कथा। स्वरूप और रचना-शैली के आधार

भी किसी निश्चित सीमा रेखा में अग्र तक नहीं बाँधा जा सका है। इसी कारण कथा के इस पुरातन परम्परागत वृक्ष में सदैव नयी नयी शाखाएँ फूटती रही हैं नयी नयी पत्तियाँ और फूल खिलते रहे हैं। इसी कारण यदि एक जगह अँग्रेज़ आलोचक विलियम हडसन ने --“Short story is the coming form of fiction and ultimately it will displace the novel entirely”--कहा है, तो दूसरी जगह आचार्य गुलाबराय ने इसका विरोध करते हुए लिखा है--“ऐसा कहना वैसा ही असंगत होगा जैसा चौपाये हाने की समानता के आधार पर भेंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा भेंढक कहना।” (‘काव्य के रूप’ नामक ग्रंथ में)

प्रसिद्ध कथाकार मुन्शी प्रेमचन्द ने इस सिलसिले में जो बात कही है, वह अधिक स्पष्ट और उपयुक्त लगती है। कहानी और उपन्यास में भेद करते हुए वे कहते हैं--“कहानी एक ऐसा उद्यान नहीं है, जिसमें भाँति भाँति के फूल, बेल, बूटेसजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।”

कहानी और लघुकथा

इस प्रकार स्पष्ट है कि कहानी और उपन्यास में उतना ही अन्तर है, जितना एक गमले और एक कुंज में। और जिस प्रकार एक गमले को छोटा उपवन या कुंज नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार कहानी को छोटा उपन्यास नहीं बताया जा सकता। और जिस प्रकार उपन्यास और कहानी में अन्तर है उसी प्रकार ‘लघुकथा’ और ‘लम्बी कहानी’ के बीच भी अन्तर है और उनकी अपनी अपनी व्यापकता के बावजूद उनके बीच एक विभाजक रेखा खींची जा सकती है। उसे हम किसी पौधे अथवा वृक्ष की शाखा पर खिला फूल अथवा फूलों के ढेर में से निकाला हुआ इत्र कह सकते हैं। और जिस प्रकार फूल और पौधे के बीच या फूलों के ढेर और उनके इत्र के बीच एक निश्चित अन्तर होता है, उसी प्रकार ‘लम्बी

कहानियों की तुलना में अपने निश्चित अन्तर की एक अलग परम्परा निर्धारित करती है। आधुनिक काल में खलील जिब्रान, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि अनेक कथाकारों की लघुकथाएँ इसी परम्परा की एक स्पष्ट मोड़ जान पड़ती हैं। मानवीय जिज्ञासा ने सभ्यता के प्रारम्भ से आज तक ज्ञान और प्रकाश की खोज में जिन जिन राहों और पगडंडियों की शरण ली है, उनमें एक सकरी किन्तु लम्बी और आड़ी टेढ़ी पगडंडी—लघुकथा के रूप में भी—अलग परिलक्षित हो जाती है।

और इस पुरातन परम्परागत अन्तर को अधिक बारीकी से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि लघुकथा मानवीय जिज्ञासाजन्य अनुभूतियों और चिन्तन के मेल से उत्पन्न ज्ञान के उन प्रकाश-बिन्दुओं के समान है, जिनकी संवेदना जीवन के लिये सत्य को सार रूप में प्रकट करने को आकुल है। कहानी की तरह उसमें मनोवैज्ञानिक सत्य अथवा जीवन की घटनाओं के पीछे व्याप्त विराट सत्य का प्रतिपादन होते हुए भी, वह मनोविज्ञान अथवा घटनाओं के गलीकूचों में नहीं भटकती। वह विचारों, भावनाओं, धारणाओं, मान्यताओं और कल्पनाओं के बीहड़ वनों में से गुजरकर उसपार निकलने की बजाय उनकी आत्माओं में समाकर, उनके भीतर छिपे एकांत सत्य को खोजकर उसका उद्घाटन करती हुई आगे बढ़ती जान पड़ती है। 'कहानी' को यदि बीहड़ वन में भटककर पार जानेवाला पथिक कहा जाय तो 'लघुकथा' को वन की भिन्न भिन्न वस्तुओं के भीतर छिपे सत्य का अन्वेषक कहना होगा।

अन्य गुण

और इसके अतिरिक्त लघुकथा अपनी व्यापक सीमा में यह गुण भी रखती जानपड़ती है कि जब उसका सत्य उद्घाटित होता है, तो अपने प्रभाव को दीर्घायु करने के निमित्त वह एक चमत्कार की तरह प्रकट होता है। जिस प्रकार गुलाब के इत्र में गुलाब के फूल की सुगन्ध रहते हुए भी वह उसकी यथार्थ सुगन्ध से अधिक तीव्र सुगन्ध रखता है, उसी

प्रकार कहानी के वस्तु-यथार्थ की सुगन्ध लघुकथा में वस्तु-सत्य के सार रूप में अधिक तीव्र हो जाती है और उसकी तीव्रता के आभास को चमत्कार कहा जा सकता है।

सर्जक और सर्जन

अस्तु, वस्तु अथवा घटना के भीतर का सत्य ही रचनात्मक प्रेरणा बनकर लघुकथाकार को “एकोह बहुस्याम्” की भावना से पीड़ित करता है और तब उस सत्य का उद्घाटन करने के लिए सम्बद्ध घटना को आधार बनाकर कथाकार लघुकथा की सृष्टि करता है। चाहते हुए भी सफल ‘लघुकथा’ प्रतिदिन रचने का सामर्थ्य अभ्यस्त लेखक में भी अब तक नहीं दिखायी दिया, इसका एक कारण यह भी हो सकता है। जिस प्रकार वैज्ञानिक किसी वस्तु के भीतर का अज्ञात सत्य उद्घाटित करने के निमित्त रोज प्रयोग करता है और तब कहीं जाकर वह उसे खोज पाता है; उसी प्रकार लघुकथा लेखक की जिज्ञासा वस्तु के सत्य का असें तक अध्ययन करती रहती है और तब कहीं वह सत्य को पाता है, और तब वह सत्य प्रेरणा बनकर फिर कथा का ताना बाना बुनता है और एक चमत्कार की तरह कथा के अंत में अपना उद्घाटन करता है।

रचना सूत्र

इस प्रकार 'कहानी' और 'लघुकथा' की अपनी अपनी विशेषताओं के कारण उनकी रचना के सूत्रपात (Approach) में पारस्परिक अन्तर है। कहानी लेखक पात्रों के स्वभाव चित्र के आधार पर घटनाओं के उतार चढ़ाव में पात्रों के पीछे पीछे चलकर उसके अन्त तक पहुँच सकता है; किन्तु 'लघुकथा' में कोई विचार विशेष अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने की आकुलता लेखक के मनमें पहले उत्पन्न करता है और वह विचार विशेष आगे आगे चलकर पात्र एवं घटनाओं का ताना बाना बुनता हुआ अन्त में अपना उद्घाटन करता है। अन्त में उद्घाटित होनेवाला विचार विशेष जब तक मनमें पहले नहीं बैठ जाता,

तब तक 'लघुकथा' की रचना होना असम्भवप्राय होता है; किन्तु 'कहानी' के लिये यह इतना आवश्यक नहीं। घटनाओं अथवा पात्रों के चरित्र चित्रण की डारी पकड़कर कहानीकार कभी कभी किसी असम्भावित अन्त पर भी अनायास पहुँच जाता है, पहुँच सकता है।

लम्बी कहानी द्वारा उद्घाटित सत्य भी एक दीर्घायु प्रभाव अपने पाठक पर डाल सकता है; किन्तु वह घटनाओं के प्रवाह में पाठक को यत्र तत्र भटकाती हुई चलकर फिर अन्त में अनायास ही वह प्रभाव उत्पन्न करती है। पूरी कहानी की सफलता इसीमें समझी जाती है कि वह अन्तिम सत्य का आभास बीच में कहीं भी प्रकट न होने दे और अन्तिम सत्य प्रकट होने के पश्चात् उसकी प्रत्येक घटना पर विचार किया जाय तो वे सब उसी सत्य की ओर उन्मुख जान पड़ें। कहानी उस सत्य पर घूम फिरकर पहुँचती है और लघुकथा सीधे लक्ष्य की ओर बढ़ती है—इधर उधर भटकती नहीं। कहानी में वह सत्य गौण समझा जा सकता है, किन्तु लघुकथा में वह प्रधान होता है। और तभी 'लघुकथाओं' की अपने अस्तित्व की भिन्नता स्पष्ट हो पाती है। तो लघुकथाओं के अपने 'अस्तित्व की भिन्नता' को स्वीकार करते हुए उन्हें 'लम्बी कथाओं का सार रूप' या संक्षिप्त रूप मानना तनिक गुँथी हुई बात लगती है।

‘आकार’ या ‘प्रकार’

अनेक बार 'आकार' के आधार पर 'लघु' और 'दीर्घ' कथाओं के बीच सीमा-रेखा खींची जाती रही है। किन्तु केवल आकार में छोटी होने के कारण कहानी को लघुकथा की संज्ञा देना अथवा आकार में बड़ी होने के कारण उसे दीर्घ कथा कहना आमक जान पड़ता है। कथा साहित्य की व्यापकता और लम्बी परम्परा इस बात को स्पष्ट करने में पर्याप्त समर्थ दिखायी देती है कि लघु अथवा दीर्घ कथा की पहचान 'आकार' की बजाय 'प्रकार' के आधार पर की जानी चाहिए। यदि चार छै पंक्तियों में कोई पौराणिक या ऐतिहासिक कथा दुहरा दी जाय

अथवा किसी घटना को लिख दिया जाय तो वह बड़ी कहानी का 'सारांश' या उसका 'संक्षिप्त रूप' भले ही गिन लिया जाय, उसे 'लघुकथा' नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार छोटी छोटी 'परियों की कहानियाँ' अथवा बच्चों को सुनायी जानेवाली अनेक कथाएँ भी 'लघुकथा' की कोटि में नहीं गिनी जा सकती। आकार में छोटी होने पर भी उन्हें 'कहानी' कहना ही अधिक उपयुक्त लगता है। फिर प्रसगानुकूल उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जानेवाली कथाओं को 'दृष्टान्त' भले ही कह लिया जाय, उन्हें 'लघुकथा' मान लेना भी अनुचित सा जान पड़ता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि अनेक 'दृष्टान्त' भी लघुकथा की परिधि में आते हैं, सभी नहीं आ सकते।

अनेक बार आकार में बड़ी होते हुए भी अनेक कथाओं को लघुकथाओं की संज्ञा देना—उनके गुणधर्मानुसार—अधिक उपयुक्त लगेगा। पंचतंत्र आदि की कथाओं के उदाहरण इस सिलसिले में देखे जा सकते हैं।

अस्तु, आकार की बजाय प्रकार के आधार पर ही कहानी अथवा लघुकथा की पहचान करना अधिक युक्ति संगत होगा। जब किसी बड़ी कहानी के 'सारांश' को 'लघुकथा' नहीं कहा जाता तो 'लघुकथा' के मान्य गुणों से युक्त केवल आकार में बड़ी कहानी को 'लघुकथा' क्यों न कहा जाय ?

यह प्रश्न विवादास्पद हो सकता है, और इस पर कोई निर्णायक बात जानने के लिये हमें श्रद्धा और नम्रता पूर्वक अपने महारथियों की ओर ही देखना चाहिए।

प्रचलित शैलियाँ और नवीन संभावनाएँ

शैली और सामग्री की दृष्टि से अनेक प्रकार की लघुकथाएँ मौलिक अथवा अनुवाद रूप में हमारे साहित्य में विद्यमान हैं। उनका विभाजन सूत्रकथा (वैदिक कालीन कथाएँ), नीति कथा (पंचतंत्र, जातक आदि की

कथाएँ), रूपकात्मक, संकेतात्मक, प्रतीकात्मक आदि अनेक रूपों में किया जा सकता है। ख़लील जिब्रान, रविबाबू आदि महान लेखकों की कहानियाँ रूपक, संकेत, या प्रतीक कथाओं के रूप में अधिक हैं। अन्य अनेक पुरानी कथाएँ भी इन शैलियों में विद्यमान हैं।

समय समय पर 'कथा' नवीन तत्वों के संगठन से अपने क्षेत्र को अधिक व्यापक और बलशाली भी बनाती आयी है। यथा हिन्दी में प्रेमचंद काल में कहानी को मनोवैज्ञानिक सत्य का ऐसा दृढ़ और नवीन आधार प्राप्त हुआ कि उसके आगमन के पश्चात हिन्दी कहानी ने एक नवीन दिशा में प्रगति की। यह तत्व ख़लील जिब्रान और रविबाबू की लघुकथाओं में तो पाया ही जा सकता है, साथ ही अब हिन्दी की कहानियों के साथ साथ लघुकथाओं में भी पर्याप्त मात्रा में अवतीर्ण होने लगा है।

काल के प्रवाह में अन्य अनेकों तत्व कथा को प्राप्त होते रहेंगे; जिनका होना स्वाभाविक ही नहीं, अवश्यम्भावी भी है। तभी तो साहित्य अपनी प्रगतिशीलता के गुण का निर्वाह कर सकेगा।

अनन्त और विराट जीवन सदैव से सहस्रों प्रेरक तत्व, जिनमें अनेक नवीन भी होते हैं, अपने में निहित किए हुए है। और वे तत्व अपने समय पर अनायास ही साहित्य साधकों को मिल जाया करते हैं। बहुत सम्भव है कि प्रस्तुत संग्रह में भी शैली आदि सम्बंधी कुछ नवीनताएँ विज्ञ पाठकों एवं साहित्य मनीषियों को दृष्टिगोचर हो जायें और साहित्य में आनेवाली प्रत्येक नवीनता की तरह इसमें कुछ श्रेष्ठ तत्व हैं भी या नहीं, इस सम्बंध में कुछ कहने का अधिकार मेरा नहीं।

हिन्दी का लघुकथा साहित्य

हिन्दी साहित्य के जो अनेक क्षेत्र अब तक अविकसित अथवा अछूते से रूप में हैं, उनमें से एक लघुकथा साहित्य भी है। इस दिशा में कोई

आज के व्यस्त और त्रस्त जीवन की अनगिनती उलझनों और समयाभाव की समस्या में इस दिशा में प्रगति की प्रेरणा के पर्याप्त बीज विद्यमान हैं। आशा है, नवीन प्रतिभा इस 'प्रेरणा' से अछूती नहीं रह सकेगी।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१०	झँपती	झेंपती
२४	१०	में	में
९६	१२	करना	करता
९६	१३	बगृह	बन्दीगृह
९६	१९	गर्जना	सर्जना
९९	१३	बेल, बूटेसजे	बेल-बूटे सजे

हमारे आगामी प्रकाशन

★ परदे की दुनिया
अभिनेता-अभिनेत्रियों
का सुन्दर, सचित्र परिचय

★ नये एकांकी
(तरुण नाटककारों का
प्रतिनिधि एकांकी संग्रह)

★ कथा कुञ्ज
(तरुण कथाकारों का
प्रतिनिधि संग्रह)

★ बाल तथा प्रौढ़ साहित्य
की अनेक सुन्दर,
सचित्र पुस्तकें !



रे खा प्र का श न
गाँधी बाग, नागपुर २.



“इन लघुकथाओं के लेखक श्री ‘भृंग’ तुपकरी को जानने का अवसर मुझे बहुत दिन पहले मिल चुका है। मैं उन्हें नाटक लेखक के रूप में पहचानता आया हूँ। नागपुर आने पर उनका कविरूप भी देखा। फिर उनका एक उपन्यास भी मुझे पढ़ने को मिला। आज लघुकथाकार के रूप में वे जनता के सम्मुख प्रस्तुत हो रहे हैं। उनकी लघुकथाएँ पढ़कर उनके वे सब रूप जैसे दब गये। इसका यह अर्थ नहीं कि वे कवि या नाटककार के रूप में प्रमुख नहीं रहे हैं। इन लघुकथाओं में मैंने लेखक की जिस उत्कृष्ट प्रतिभा का दर्शन किया है उसपर मैं बहुत कुछ न कहकर केवल इतना कहना चाहूँगा कि श्री तुपकरी ने इन लघुकथाओं में जीवन के जिन सत्यों का दर्शन किया है वे निश्चित ही साहित्य में अपना स्थायी महत्व रखते हैं। .. तुपकरी जहाँ नाटककार हैं, कवि हैं, वहाँ एक सुन्दर चित्रकार भी हैं।... इन लघुकथाओं में चित्रकार के शब्द स्पर्शों द्वारा अंकित आकृतियों के वैसे ही रूप हैं जो चित्र में रहते हैं।...” — (भूमिका से)



रेखा प्रकाशन, नागपुर - २

